लोपामुद्रा

[ऋग्वेद-कालीन उपन्यास]

पहला भाग

लेखक

श्री कन्हैयालाल माणेकलाल मुनशी

अनुवादक

श्री हृषीकेश शर्मा

Jokhiram Baijnath.
173, Harison Road;
Calcutta.

पहली बार
१०००

मूल्य एक रुपया

मई
१९३७

मुद्रक
सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट

प्रकाशक
श्री कन्हैयालाल मुनशी, एडवोकेट, बम्बई

सोल एजेन्ट्स
सस्ता साहित्य मण्डल
दिल्ली

विषय सूची

—:o:—

आरम्भ

•

ऋग्वेद के प्रसंगों और तत्कालीन महान् पुरुषों के सम्बन्ध में काल्पनिक उपन्यास रचने का मेरा यह चौथा प्रयास है। ऋग्वेद का जीवन नया है। उसमें इतिहास के उषःकाल की हलचल और तेजस्विता है। इस इतिहास की तुलना में पौराणिक कथाएँ नीरस लगती हैं। अक्सर ऐसा होता है, कि पौराणिक साहित्य से बना हुआ हमारा मन इस जीवन की कल्पना तक नहीं कर पाता। बाद के सस्कृत-साहित्य पर निर्मित हुई हमारी वाणी, उसके साथ पूरा-पूरा न्याय नहीं कर पाती। इस काल का मानव-स्वभाव समझना भी कभी-कभी मुश्किल हो जाता है।

ऋग्वेद-सहिता के दस मंडल हैं। प्रत्येक मण्डल में अनेक सूक्त हैं और हर सूक्त में अनेक मन्त्र। इन सबकी भाषा महर्षि पाणिनि की

संस्कृत से अनेक शताब्दियों पूर्व बोली जानेवाली भाषा है। इसके चार-पाँच मण्डलों की रचना तो पीछे से हुई ; पर बाकी के मण्डलों के सूक्त अत्यन्त पुराने काल के हैं। इतना ही नहीं, उनमें भारत के इतिहास की प्राचीन-से-प्राचीन घटनाओं का समकालीन उल्लेख पाया जाता है।

जब ये घटनाएँ घटित हुईं, तब आर्य लोग पाँच जातियों—पंच-जनाः—में विभक्त हो गये थे। ये जातियाँ सप्तसिन्धु में रहती थीं। सप्त-सिन्धु, सरस्वती, दृषद्वती, शतद्रु, परुष्णी, असिक्नी और वितस्ता—इन सात नदियों से मिलकर बने हुए पंजाब-प्रदेश को सप्तसिन्धु कहते थे। आर्य अब तक जमुना के किनारे तक न पहुँचे थे। इनकी भाषा में अब भी जंगली दशा के स्मरण मौजूद थे। इनके हथियारों में लकड़ी के बने हुए दण्ड, पत्थर और हड्डियों के बने वज्र शामिल थे। त्वष्टा, पर्जन्य और द्यावापृथ्वी-जैसे प्राचीन देवताओं का मान घट गया था। आकाश के देव वरुण भी, जो सत्य-असत्य की परख करते और लोगों के हृदयों में प्रेरणा करते थे, युद्ध के देव इन्द्र की तरह सबको प्रिय नहीं हुए थे। अग्नि, सूर्य और सोम लोकप्रिय देवता थे।

ये आर्यजन कई हिस्सों में बँट गये थे। इन्हें 'विश्' कहते थे। विश् भिन्न-भिन्न ग्रामों में रहते थे। ग्रामों में जिनकी गौएँ एक साथ एक ठिकाने बँधती थीं, वे एक गोत्र के माने जाते थे। गोत्र पृथक्-पृथक् कुलों से बनते थे। प्रत्येक ग्राम का सारा प्रबन्ध उसका मुखिया—ग्रामणी—किया करता था। कभी-कभी ग्राम-के-ग्राम अपने बाल-बच्चे, गाएँ, घोड़े और बकरे लेकर चारे की तलाश में एक से दूसरे ठिकाने

चले चाते थे। गाँव स्वावलम्बी समुदाय होता था। जौ, चावल, तिल, मूँगफली—यही उन लोगों का सामान्य आहार था। वे घी-दूध भरपेट खाते थे, मास भी खाया जाता था, और गाय का भी। वे कपास और ऊन के कपड़े बनाकर पहनते थे। मृगचर्म भी पहनने-ओढ़ने के काम में लाया जाता था। चमड़े की मशक पानी भरने के काम आती थी। गाएँ आर्यों को बहुत ही प्रिय थी। सिक्कों के बदले लेन-देन में उनका व्यवहार होता था। दान और पुरस्कार में गायें दी जाती थीं। पीछे से गौ को जो पवित्रता मिली, वह उस समय तक नहीं दी गई थी।

आर्य गौर-वर्ण, ऊँचे क़द के और सुन्दर-नयन थे। वर्णव्यवस्था उनमें नही थी। स्त्री या राजा ऋषि हो सकता था। ऋषि युद्ध-क्षेत्र मे उतर कर हजारों का सहार कर सकता था। राजपद या ऋषिपद जन्म से नहीं, कर्म से मिलता था। स्त्रियाँ पढती थीं और बाज-बाज तो ऋषि भी बनती थीं। वे युद्ध-क्षेत्र में भी जाती थीं। युवक-युवतियाँ अपने हाव-भावों से एक-दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करते थे। ऋषि रूपवती स्त्रियों के आकर्षण के लिए मन्त्रों की रचना करते थे। प्रत्येक स्त्री को विवाह करने की आवश्यकता न थी। कुमारी से उत्पन्न बच्चे अधम-पतित नहीं समझे जाते थे।

आर्य बढ़ई, लोहार, वैद्य, सुनार, कुम्हार, चमार और जुलाहे का धंधा करते थे। खेती भी वे करते थे। कुछ लोग कविता भी करते थे। पणी नौकाओं में बैठकर परदेश को जाते और व्यापार करते थे। लोगो की गौएँ चोरी चली जाती थीं। आर्य भेड़िये की तरह लोभी थे। व्याज का धन्धा करते और इसलिए ऋषि उन्हे तिरस्करणीय दृष्टि से देखते

थे। व्यापार के लिए घोड़ों, ऊँटों, कुत्तों और बैलों की पीठ पर बोरे लाद कर एक जगह से दूसरी जगह जाते थे। गधों की भी कद्र थी। एक ऋषि मन्त्र-द्वारा सौ गधे भेंट में माँगता है।

आर्य लोग दस्युओं और दासो से बहुत सताये जाते थे। उन्हे अनेक बाधाओं और संकटों का सामना करना पड़ता था; अतः आर्य उनसे बहुत द्वेष करते थे। दास लोग कृष्ण वर्ण, चपटी नाक के, बल-वान् और स्वभाव के बड़े दुष्ट होते थे। वे आर्यों की गौओं को चुरा ले जाते, पत्थर से बने पहाड़ी किलों में रहते और शिवलिंग की पूजा करते थे। वे लोग यज्ञ नहीं करते थे। आर्यों के देवों का तिरस्कार करते और व्रत-विहीन होते थे; लेकिन दासों का यह वर्णन आर्यों-द्वारा किया हुआ है—यह आर्य-ऋषियों की गवाही है; परन्तु यथार्थ में दस्यु भारतवर्ष के शिव-पूजक मूल-निवासी थे। मोहेन्जेदारो, जिसके खँडहर आज सिन्ध मे मिले हैं, इन दस्युओं का मुख्य नगर था। दस्युओं के राजा शंबर के पास पत्थरों के बने सुदृढ़ सौ दुर्ग थे; और अब तक जितने प्रमाण मिले हैं, उनपर से यह सिद्ध होता है कि यह एक सुसंस्कृत उन्नत जाति थी; परन्तु अन्त मे, उन्हें आर्यों ने परास्त किया और वे दास बने। कुछ वर्षों में ये दस्यु आर्य बन गये। इनके इष्टदेव शिवलिंग, उग्रदेव का नाम धारण कर आर्यों के मुख्य उपास्य बने। ऋग्वेद के ब्राह्मणों में इसका उल्लेख है। वही उग्रदेव शंकर-स्वरूप आज आर्य-धर्म में भक्ति-भाव से पूजे जाते हैं। मैंने इसीलिए इस लिंग को उग्रकाल का नाम दिया है।

आर्यों के राजन्य और मघवन्; अर्थात्—पैसेवाले लोग आली-

शान लकड़ी के बने महलों में रहते थे। लोहे के किले भी होते थे। बाज़ किलों की तो सौ-सौ दीवारें होती थीं, ऐसा उल्लेख है। साधारण घर मिट्टी के बने होते थे। गायों और बकरों को रखने के लिए खिरक होते थे। आर्य नौकर, अर्थात्—दास भी रखते थे। वे बढिया-से-बढिया कपडे पहनते और सुन्दर लबे बाल सँवारते थे। युद्ध में वे बखतर पहनते और हथियार काम में लाते थे। घुड़दौड़ की बाजी का उन्हें ख़ासा शौक़ था। वे जुआ भी खूब खेलते थे। ऋषि 'सोमरस' पीकर और इतर सर्वसाधारण सुरा पीकर नशा करते थे। लोग कभी-कभी सभाओं में मिलते थे। ऋषि आश्रमों में रहते और निःशुल्क विद्या-दान करते थे।

वर्णाश्रम-रहित समाज, थोडे से गौरवर्ण आर्य, देश भर में फैले हुए, काले रग के दस्यु, झोपड़ियों या मिट्टी के घरों में रहना, सिक्कों के बदले गायों का चलन, विवाह की शिथिलता, प्रायः सम्पूर्ण स्त्री समानता, आहार-विहार की पूरी स्वतत्रता, राजा दिवोदास-जैसा महान् राजा का भी अतिथियों को मास परोस कर 'अतिथिग्व' की उपाधि प्राप्त करना —यह सारा चित्र हमारी दृष्टि के आगे घूमने लगता है। ऋषि चिपटी नाकवाले, काले-कलूटे दास-दासियों से भीख माँगते और भेंट लेते, सोमरस पीकर नशे में चूर रहते, लोभ और क्रोध का प्रदर्शन करते और गौएँ देनेवाले की प्रशसा करते थे। वे कभी-कभी द्वेष से भड़क कर आग-बगूला हो जाते और एक दूसरे पर देवों का क्रोध उतारने का प्रयत्न करते। कई ऋषियों के पिताओं तक का पता न था; लेकिन उनमें आदर्शवादिता, देशभक्ति, सत्य और तप की तीव्र अभिलाषा थी। कभी-कभी प्रत्यक्ष रूप से देवों के साथ वार्तालाप का अभ्यास। आर्यत्व

के जीवन्त इन विश्वकर्माओं को समझना बड़ा ही कठिन काम है। इनके संबन्ध में पुराणों में वर्णित ऋषियों का खयाल हमें भुला देना चाहिए।

तत्कालीन भाषा और भाव में भी कुछ आश्चर्यजनक अन्तर मालूम पड़ता है। पिछले काल की सस्कृत और आधुनिक हिन्दी के शब्दों में जुदे-जुदे भाव हैं और मन से रची हुई सृष्टि है। इस शब्दकोष के उपयोग से ऋग्वेद-कालीन मनोदशा और भावों को व्यक्त करने मे मैं अपने को असमर्थ पाता हूँ। 'अतिथिग्व'—यह मांस खिलाने-वाले की बहुमानास्पद उपाधि थी। प्राण या आत्मा का कोई खयाल ही नहीं था। प्राण गया या आत्मा गया, यह तो शब्दकोष ही मे नहीं, ईश्वर की कल्पना नहीं, नाम नही, उसकी मान्यता नहीं। जन ही जाति था। 'नाथ' जैसे शब्द के बदले आर्य स्त्रियाँ 'गर्वश्रेष्ठ'-जैसा कोई शब्द कहती हों, तो कोई अचम्भे की बात नहीं। स्वदेश की कल्पना नहीं थी, देवता अनेक थे और आर्य लोग जरा-जरा-सी बात में देवता को ऐसे पकड कर बैठ जाते थे, जैसे वह उनका ही कोई सगा साथी या मित्र हो। वीभत्सता का, अश्लीलता का, कोई विचार नहीं था। लोपामुद्रा अगस्त्य ऋषि से जो प्रार्थना करती है, वह ऐसे शब्दों में है, कि उसका अंग्रेजी में अनुवाद करनेवाले को उसे लेटिन में छापना पड़ा।

इस 'लोपामुद्रा' में भारतवर्ष के इतिहास की सर्वप्रथम सच्ची घटनाएँ अङ्कित हुई हैं। वे घटनाएँ इस प्रकार हैं—

तृत्सु जाति के राजा दिवोदास बडे वीर और उदार थे। उन्होंने

पक्थों के साथ युद्ध किया था। दस्युओ के राजा शवर के साथ भी उन्होंने अनेक बार युद्ध किया और अन्त में उन्हे मारकर उनके नब्बे किले छीन लिये। उसका सुदास नामक लड़का था। देवता मित्रावरुण के दो पुत्र थे—अगस्त्य और विश्वामित्र। वशिष्ट ने अगस्त्य को तृत्सुओं का परिचय कराया। वशिष्ट तृत्सुओं के पुरोहित थे।

भरत नाम की प्रतापी जाति में विश्वामित्र ऋषि ने जन्म लिया था। यह कुशिक के वशज और गाथीनो की दिव्य विद्या के अधिकारी थे। इनके और वशिष्ट के बीच मे वैर-भाव बढा। विश्वामित्र तृत्सुओ के पुरोहित बने। जमदग्नि ऋषि भी उनके मित्र थे। विश्वामित्र ने गायत्री-मत्र की रचना की। इनके सम्बन्ध में बहुत-सी पुराण-कल्पित बाते मैंने ली हैं। विश्वामित्र के पिता गाधि थे; उन्होंने अपनी कन्या सत्यवती भृगु ऋचीक ऋषि को व्याह दी थी। देवता की कृपा से एक ही समय में गाधि के विश्वरथ और ऋचीक के जमदग्नि नाम के पुत्र पैदा हुए। विश्वरथ ने राज्य छोड़कर विश्वामित्र नाम रख लिया और ऋषि बन गये।

ऋग्वेद के प्रमाणानुसार लोपामुद्रा ऋषि थी। उसने अगस्त्य को ललचाकर अपना पति बनाया। इस प्रसंग के इस देवी के रचे हुए मन्त्र ऋग्वेद में हैं।

इस समय आर्यों और दस्युओं के बीच में रग, धर्म और संस्कृति का भेद, संघर्ष का रूप धारण कर रहा था। शम्बर और उसके साथी दस्यु लोग लिंग की पूजा करते थे। ये लोग शक्ति में, वीरता में, या सुख के साधनों में आर्यों से किसी क़दर कम नहीं थे; परन्तु विद्या और

संस्कार में आर्यों से नीचे थे। जब दस्युओ को आर्यजन क़ैद करते, तब गुलाम बनाकर रखते थे और इसी से 'दास' शब्द गुलामो के लिए प्रयोग किया जाने लगा।

एक बार आर्यों के इतिहास में मुख्य प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि विजित दस्युओं का क्या किया जाय ? यदि उन्हे मार डाला जाय, तो हमारी सेवा-चाकरी कौन करेगा ? और जिन्दा रखा जाय, तो समाज में उनका क्या पद होगा और दासी-पुत्र का कुटुम्ब मे कौन-सा स्थान होगा ?

इन प्रश्नों पर भयंकर लडाइयॉ हुईं। सिर कटे, विरोध ने उग्रतर रूप धारण किया। कई विद्वान् मानते हैं, कि वशिष्ट और विश्वामित्र में जो विरोध भाव बढा, वह इसी समस्या को लेकर। वशिष्ट रक्तशुद्धि के प्रतिनिधि थे, तो विश्वामित्र दस्युओं को आर्य बनाने का रसायन तैयार कर रहे थे। आर्यत्व कुछ जन्म से नहीं आता; बल्कि गायत्री-मत्र के जप से शुद्ध होकर सत्य और ऋत से प्रेरित हो यज्ञोपवीत को पहनने से उसकी सिद्धि होती है। कोई भी मनुष्य नया जन्म ग्रहण कर सकता है, द्विज बन कर आर्य हो जाता है—यह रीति उन्होंने सिखाई।

इस मन्त्र के प्रभाव से इस देश में रग-भेद मिट गया और सस्कार-भेद के प्रमाण से प्रजा के विभाग हुए। विप्र का काम करनेवाले ब्राह्मण कहलाये। राजन्य क्षत्रिय कहलाये। सामान्य प्रजा, जो वैश्यों में बॅट गई थी, वैश्य कहलाई। जो द्विज नही हुए थे, वे शूद्र के नाम से सम्बोधित किये जाने लगे। शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मणों में इस प्रकार

की वर्ण-व्यवस्था दीख पड़ती है , पर कई सदियों पहले की रची हुई संहिता में नहीं।

इस समस्त वस्तु को, पृथक्-पृथक् नाटकों के रूप में लिखने का मेरा बहुत दिनों से विचार था। आज कुछ वर्षों से मेरी वृत्ति और कल्पना उपन्यास या कहानी लिखने में नहीं रमती, उसे तो नाटक के एकमात्र फड़कते हुए सुसग्रथित स्वरूप की मोहिनी लगी है। लोपामुद्रा का पहला खण्ड नाटक के रूप में नहीं जा सका। इसे मैंने कहानी का ही रूप दिया है। इसके दूसरे-तीसरे खण्ड नाटक-रूप में अवतीर्ण होंगे। अभी से, आगे की बात कौन निश्चय रूप से कहे ?

लोपामुद्रा

पहला भाग : विश्वरथ

पहला परिच्छेद

बाल्यकाल

१

वर्षा-ऋतु का आरम्भ हो गया है। सायङ्काल का समय है। अस्त होते हुए सूरज का हल्का-सा प्रकाश द्वार मे से होकर अग्निशाला के भीतर पड़ रहा है। पास ही में एक लकड़ी के तख्ते पर एक बूढा मनुष्य बैठा हुआ है। उसके मुख पर चिन्ता की गहरी छाप पड़ी हुई है। बूढ़े की बड़ी-बड़ी आँखें अग्निशाला के बीचोबीच बनी हुई वेदी पर गड़ी हैं। यह भरत जाति के राजा कुशिक के पुत्र गाधि हैं। पुरुओ का राजा खेल भी वृद्ध के पास बैठा हुआ है—तरुण, तेजस्वी और अधीर। अधीरता से बैठे-बैठे वह अपना पैर हिलता जाता है। सामने सेनाधिपति

भद्राश्व खड़ा है। उसके चेहरे पर भी चिन्ता की छाया छाई हुई है। उसके पास ही एक पथिक खड़ा है—पूरे ऊँचे कद का, तगड़ा और नौजवान। उसके हाथ में एक मोटी और लम्बी लाठी है। वह जब कुछ बोलता है, तो उसके सिर के बाल नाच उठते हैं। पथिक निश्चिन्त-सा मालूम पड़ता है। उसके मुख-मण्डल पर चिन्ता की कोई रेखा नहीं मालूम होती।

बड़ी भयानक खबर आई है। भरतों के जनपद पर कवि उशना* के कुल के प्रतापी उर्व के पुत्र ऋचीक भृगुओं और अनुद्रहुओ की जबर्दस्त सेना लेकर चढ़ आये हैं। यह सेना कल सरस्वती नदी के किनारे आ पहुँचेगी। भरत तैयार हैं। भृगुओं की शक्ति भी तो कम नहीं है और अब कौन कह सकता है, कि कल क्या होगा?

खेल को अपने बाहुबल पर पूरा-पूरा विश्वास है। गाधिराज की पुत्री सत्यवती को ब्याहने की उसे बड़ी हौंस है, और साथ ही बूढ़े गाधि के पुत्र न होने से उसके हृदय में एक आशा छिपी हुई है—किसी-न-किसी दिन वह भरतों के जनपद पर शासन करेगा और उसकी विशाल सम्पत्ति का मजा लूटेगा।

अपरिचित पथिक पर्वत के समान अचल खड़ा हुआ है। वह मितभाषी है, जो कुछ कहता है सक्षेप में। सरस्वती नदी की परिक्रमा करने निकल पड़ा है। उसने ऋचीक की सेना को आते हुए देखा है—बहुत बड़ी है, महाशक्तिशालिनी है! सन्धि किये बिना अब छुटकारा नहीं।

खेल मजाक करता है, वैरियों का विनाश तो होगा ही! सामने

---

* पुराणों में इन्हें 'शुक्राचार्य' कहा गया है।

पथिक भी हँसता है—ज़रा अभिमान के साथ। गाधि पथिक की बातें सुनकर, अपने से थोड़ी दूर, एक कुटी में, रात में उसके रहने की व्यवस्था करने के लिए आदेश करता है।

वक्त बातो-ही-बातो में बीत जाता है। खेल अधीर हो रहा है—युद्ध आरम्भ होने से पहले ही विवाह कर दिया जाय तो कैसा? गाधि सोच मे पड जाते हैं—विवाह इस समय, ऐसे मौके पर! अधीर खेल जरा ढिठाई से बोला—हाँ, आपके भी तो कोई लडका नहीं, और इस लड़ाई में कहीं कुछ हो जाय तब?

गाधि की आँखों में घबराहट होती है,—यह मेरे मरने के बाद ही अपना उत्तराधिकार पक्का किये लेता है? क्या बात! वे मुँह से चूँ तक नहीं करते, और बोलने से लाभ ही क्या? पर खेल तो मूर्ख है, जिद करता है। क्या करूँ? अन्त में कौशिकराज गाधि विवाह का प्रस्ताव मंजूर करते हैं। पत्नियों के सदन मे—अन्तःपुर में खबर भेजते हैं—विवाह की तैयारी हो।

(२)

पत्नी-सदन में क्रोध का पार नहीं। रानी की आँखो में आँसू आ रहे हैं। कोख का पूत न होने से ये अत्याचार सहने पड़ेंगे? कौशिकी सत्यवती तेजस्विनी है, गर्विष्ठ हैं। इस अपमान को सुन कर कॅप रही है। खेल ऐन सकट की अनी पर इस तरह की दुष्टता और जिद करे? देवो ने सत्यवती को लड़का क्यों न बनाया? 'माँ! माँ! शान्त रहो! कोई रास्ता निकालो, मैं इस नीच के संग विवाह न करूँगी।'—सत्यवती बोली।

'पर रास्ता कैसे निकाला जाय?, अगर इस समय, खेल के कहे

मुताबिक न किया, तो वह अपनी सेना लेकर चला जायगा। फिर क्या होगा, ऋचीक दल-बल समेत आकर जरूर भरत-ग्राम को जला कर भस्म कर डालेगा।'

माँ-बेटी की आँखों में आँसू उमड़ रहे हैं। देवों ने और सब सुख तो दिया, एक लड़का क्यों न दिया? घोषा माता की व्यवहार-कुशलता ने इस धर्म-संकट से बचने का रास्ता खोज निकाला। उसने अपने विश्वासपात्र मनुष्य बुलाये और उस पथिक को भी बुला भेजा।

प्रचण्ड हँसमुख और तेजस्वी पथिक आया। घोषा और सत्यवती उसे देख कर चकित हो गईं। उन्होंने समझ रक्खा था, कि कोई भूला-भटका राहगीर होगा, यह तो और ही तरह का है।

'तू कौन है?'—घोषा ने पूछा।

'आर्य हूँ, महिषी! क्या आज्ञा है? कहिए।'

'तेरी जाति क्या है?'

पथिक जोर से हँस पड़ा—मेरी जात-पाँत जानकर क्या करोगी? मैं परिक्रमा करनेवाला हूँ। माता सरस्वती की पूजा करता हूँ। इतना बस नहीं?

माँ और बेटी ध्यान से उसकी बात सुनती रहीं। अहो! कैसी है इसकी संस्कारी वाणी और कैसा इसका आत्मविश्वास है? दोनों को पथिक पर विश्वास हुआ।

'तेरी वाणी तो बहुत संस्कारी है।'—घोषा ने कहा।

'मैंने पूज्यपाद अंगिरा ऋषि के आश्रम में शिक्षा पाई है।'—पथिक ने नम्रता से उत्तर दिया।

'तू यहाँ क्यों आया है ?'

'सेनापति भद्राक्ष मुझे यहाँ लाये हैं।'

'ऋचीक की सेना को तूने देखा है ?'

'जी हाँ !'

'तो एक काम न करोगे ?'

'जो आज्ञा होगी, उसे माथे पर चढाऊँगा ।'

'जरूर ? वचन न पालेगा तो...'

'मुझे अग्निदेव की शपथ है ! वचन का पालन न करूँ, तो मेरी सारी विद्या जल कर भस्म हो जाय।'—पथिक ने कहा।

घोषा थोड़ी देर तक उसके मुख की तरफ देखती रही।

पथिक के मुख पर बेईमानी का कोई भी चिह्न नहीं दिखाई पड़ता था।

'सुन, इसी वक्त मैं सत्यवती को त्रितसुग्राम में राजा दिवोदास के यहाँ भेज रही हूँ। तू मेरे नौकर के साथ जाकर क्या इसे वहाँ सुरक्षित पहुँचा देगा ? देखना, कहीं बीच में ऋचीक की सेना से मुठ-भेड़ न हो जाय, इस तरह इसको ले जाना !'

'इसी वक्त ! सत्यवती को ? पर...'

उसने सत्यवती के सुन्दर ; किन्तु चिन्तातुर मुख पर नज़र डाली।

'क्यों, वचन नहीं पालना है ?'

'महिषी, वचन मैंने कभी नहीं तोड़ा ; परन्तु मैंने सुना है कि कौशिकी का विवाह तो अभी राजा खेल के साथ होनेवाला है।'

'यह खबर ग़लत है।'—घोषा ने कहा।

'यह बात मेरी समझ में ही नहीं आती।'—पथिक ने कहा।

घोषा उलझन में पड़ गई—यह पथिक फँसायेगा क्या ?

सत्यवती ने ऊपर देखा और काँपती हुई आवाज में कहा—सुन, मै दस्युओं के राजा शबर को भले ही वरूँ ; पर इस खेल की ओर तो नजर उठाकर भी न देखूँगी !

'तो कौशिकी !'—पथिक ने एक पल भर रुककर, दृढ़ता के साथ कहा—'आपकी आज्ञा को मैं मानता हूँ। मुझे अब ज्यादा कुछ नहीं जानना है।'

(३)

घोषा आदमियों को तैयार करने में लग गई। सत्यवती और एक दासी, पथिक के साथ जाकर गोशाला के समीप खड़ी हो गई। समय बीत रहा था , पर आदमी नहीं आये।

एकदम दौड़ादौड़ी सुनाई पड़ी। मशालची दौड़े हुए आये। सत्य-वती घबड़ाकर दासी से लिपट गई। पीछे से सैनिक आ पहुँचे और साथ में गाधि और खेल क्रोध में भयङ्कर लबे डग रखते आ धमके। एक क्षण के लिए पथिक उलझन में पड़ गया। उसने अपने ललाट पर पड़े हुए बाल ऊपर को सरका कर दण्ड को बाएँ हाथ से दाहने हाथ में ले लिया।

सबने पथिक, सत्यवती और दासी को घेर लिया। गाधि और खेल ने पथिक को धमकी दी—क्या करता है ? कौशिकी के साथ क्या कर रहा था ? कहाँ जाता था ? अरे तू चोर है, पापी है, दुष्ट है और अनार्य है !—पीछे खड़ी हुई घोषा खिन्न नेत्रों से देख रही थी। क्या पथिक सब भण्डाफोड़ कर देगा ?

पर पथिक हँसता ही रहा। थोड़ी देर में जब सबों के गुस्से का उफान जरा कम हुआ, तो गरज कर बोला—सुनो, मैं किसी का क्रोध नहीं सहन करता! कौशिकी को राजा खेल के साथ विवाह करना हो, तो मुझे कोई उज्र नहीं।

'कौशिकी के बारे में तू बीच में पड़नेवाला कौन होता है?'—गाधि राजा ने भयकर गर्जना की! खेल गुस्सा हो जाय, तो कल फिर क्या होगा—इतनी भर चिन्ता थी उन्हें।

'देवताओं ने मुझे यहाँ भेजा है।'—पथिक ने कहा। उसकी निर्भयता सबको भयभीत कर रही थी। किसी में उसके पास जाकर पकड़ने की हिम्मत नही थी।

'कौशिकी! तूने यह कौन-सा ढंग अख्त्यार किया है? तेरे विवाह पर ही तो भरतों के जनपद का आधार है।'—गाधि राजा ने पुत्री से कहा।

सत्यवती की आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे थे।

'पिताजी! इसमे पथिक बेचारे का कोई दोष नहीं।'—वह जरा देर नीचे देखती रही—'सारा अपराध तो मेरा है।'

'तेरा अपराध किस तरह?'

'मुझे खेल के साथ विवाह नहीं करना।'

'क्यों?'—गाधिराज ने कुछ उग्रता से पूछा—हा! पुत्रियाँ भी अब ढीठ बन गई हैं। क्या पथिक के सग में तुझे भी भाग जाना है?

'पिताजी, इस राजन् के साथ विवाह करने की अपेक्षा किसी दूसरे को वरना अच्छा समझती हूँ।'—आँसू, क्षोभ, भय सबके होते हुए भी अपनी गरदन उठा कर गाधि के सामने देखा और रोती हुई बोली।

'किसे ? सत्यवती ! तू भी पागल हो गई है ? तुझे खबर नहीं, कि राजा खेल हमारी तरफ न रहे, तो कल हमारी क्या दशा हो ?'

'क्या होगा ?'—कौशिकी ने कहा—'और्व की सेना में कोई मुझे वरने के लिए राजी नहीं होगा ? इसे तो मैं धिक्कारती हूँ। मेरे पिता के वारिस बनने के लिए उत्सुक इस राजन् को वरने की अपेक्षा, मैं इस पथिक को ब्याहना ज्यादा पसन्द करूँगी।'

'क्या ?'—गाधि ने जोर से चिल्लाकर कहा।

पथिक के मुख पर अवर्णनीय आनन्द झलक रहा था। उसने कहा—कौशिकी ! सच कहती हो ? मुझे वरोगी ?—सत्यवती सुनकर नीचे देखने लगी।

पथिक ने कहा—तो दैव की इच्छा आज फलित हुई। कौशिक-श्रेष्ठ ! आप जरा भी चिन्ता न करें।

'दुष्ट !'—कहकर खेल अपनी तलवार खींचकर आगे बढा।

'खेल ! वरुण ने मुझको कौशिकी दी है। अब उसे कोई नहीं ले सकता।'—कहकर हँसते हुए पथिक ने अपनी लाठी तानी, और खेल को आगे बढ़ने से रोका।

'तू कौन है ?'—गाधि ने पूछा।

(४)

इस प्रश्न का उत्तर रथ की घड़घड़ाहट ने दिया। वेग से दौड़ते हुए घोड़ो का एक रथ आया और उसमे से दो आदमी कूदे। आगे वाला ऊँचे क़द का, गौर वर्ण, और तेजस्वी मनुष्य है, जिसके काली किन्तु छोटी दाढ़ी शोभित हो रही है। इसकी बड़ी-बड़ी आँखे एक ही

दृष्टि से सबको देख रही हैं। उसके हाथ में एक कमण्डल और पैरों में खड़ाऊँ हैं। सब लौट पड़े, और ठिठक गये। खेल घबरा गया और बोला—गुरुवर्य !

नया आगन्तुक आता है और पथिक की तरफ उतावला होकर जाता है, और उसके पैरों पर गिर पड़ता है। सब लोग स्तब्ध हो जाते हैं—यह प्रतापी मनुष्य पैरों पर पडे ?—किसके ?

'अथर्वण ! मित्रावरुण का पुत्र अगस्त्य आपको प्रणाम करता है।'—नया आगन्तुक बडे आदर से बोला। सब चुप हैं।

'यह चोर, यह दुष्ट, यह कौशिकी का चोर कौन है ?'

'काव्य ! आपका संदेशा मिला और तुरन्त यहाँ आया।'—अगस्त्य कहता है।

'मैत्रावरुण ! तुम्हारा तप सदा बढे। बहुत अच्छा किया कि तुम आ गये, नहीं तो भरतश्रेष्ठ को अतिथि-हत्या का भारी पाप लगता।'

'भरतश्रेष्ठ ! राजन् !'—अगस्त्य कहता है—'इनको पहचानते नहीं ? भृगुओं मे श्रेष्ठ अथर्वण-ऋचीक को नहीं पहचानते ?

सबके हृदय में घबराहट पैदा हो जाती है। सिन्धु से लेकर सरस्वती तक जिसका नाम सुनकर कलेजे काँपते हैं, वह यही है और ऐसी स्थिति में ? इस भयंकर व्यक्ति का नाम सुनते ही सब लोग प्रणिपात करते हैं।

'भार्गव ! महर्षि !'—गाधिराज हाथ जोड़कर याचना करते हैं। उनके हृदय में अकथनीय हर्ष समाया हुआ है।

'हमारी अविनय क्षमा कीजिए।'

'क्षमा !'—खूब जोर से हँसकर ऋचीक गाधि को उठाता है।

'क्षमा तो मुझे आपसे माँगनी चाहिए कि बिना बुलाये मैं आया। तुम्हारे सेनापति ने मुझे पथिक समझा, तो मैं क्या करूँ। मुझे तो अपने देव की आज्ञा पालनी थी। खेल, खिन्न मत होओ। हो गया, जो होना था। देव की दी हुई दयिता (स्त्री) को मैं लौटाऊँगा नहीं।'

घोषा आगे आती है, और ऋचीक उसके पैरों पर गिरता है—माता! मुझे पुत्र-समान न अगीकार करोगी?—घोषा के हर्ष का ठिकाना नहीं। आशीर्वाद देते हुए उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है।

'कौशिकराज !'—अगस्त्य कहता है—'अथर्वण ने मुझे सन्देश भेजा था कि आपकी आज्ञा के अधीन होकर इनको सरस्वती के सामने तीर पर बसना है, मित्र-भाव से ही। कुछ भ्रम न हो जाय; इसलिए समाधान करने के लिए मुझे बुलाया है।'

सबके मुख पर हँसी छा जाती है। आशा-भग्न खेल भी सबको देखकर हँसने लगता है।

(५)

सारे गाँव में खबर फैल जाती है। युद्ध के बादल बिखर जाते हैं। सब हर्ष से प्रफुल्लित हो जाते हैं। गाँव में से लोग राजा के महल में इस नवागन्तुक भयानक जामाता के दर्शन करने के लिए आते हैं। सब अग्निशाला में जाकर जमा हो जाते हैं। ऋचीक अपनी बात कहने लगता है।

'राजन्! सिन्धु के तीर पर मैं अकेला और अनमना-सा बैठा था—वरुणदेव की आराधना करता हुआ। एक सन्तान के बिना

मेरी स्त्रियाँ मर गईं। मैंने वरुणदेव से पुत्र की याचना की।

राजा वरुण ने मुझसे कहा—वत्स ! सरस्वती के तीर जाकर बैठ। तुझे बिना माँगे ही भार्या मिलेगी। उसको तू स्वीकार करना और उसका वंश तुझे अमर कर देगा।

सरस्वती के तीर पर बसने की याचना करने के लिए, हे भरतश्रेष्ठ ! मैं आपके पास आया हूँ। आपने तो मुझे भार्या भी दे दी।'

सब हँसने लगते हैं। खेल भी हँसने लगता है। वह अपने पुरोहित अगस्त्य से कहता है—अच्छा हुआ कि तुम समय पर आ पहुँचे, नहीं तो हमारे पाप की सीमा न रहती।

अगस्त्य, बहुत ही थोड़ा हँसते हैं। उनकी ज्यादा हँसने की आदत नहीं—अथर्वण ! तुम्हारे पुत्र होगा, तो उसे मेरे यहाँ पढने के लिए भेजोगे न ?

'जरूर !'

सब हँसते हैं। सत्यवती लज्जित होकर नीचे देखती है।

(६)

कुछ रात बीते, एक वृक्ष के नीचे, ऋचीक बार-बार ऊँघता है। सत्यवती धीरे-धीरे चोर की तरह पत्नी-सदन से निकलकर थाला के पास खड़ी है और मुग्ध बनकर ऋचीक का मुँह देखती है। वह अकेली-ही-अकेली हँसती है। भार्गव, काव्य और अथर्वण की कैसी कीर्ति, कैसा प्रताप, कैसी विद्या, कैसी महिमा !—उसका हृदय धड़कता है।

मानो सत्यवती के हृदय की धड़कन से जाग उठा हो, उस तरह ऋचीक जाग पडता है और अपनी आँखों के आगे जिस सुन्दरी के

सुन्दर नयनो को वह स्वप्न म देखा करता था, उसे सामने खडी हुई देखता है। यह स्वप्न है या सत्य है ? इसके निर्णय करने की वह राह नहीं देखता, और दोनों हाथों से सत्यवती के मुख को अपने पास खींचकर उसका चुम्बन करता है। सत्यवती लज्जित होकर नीचे देखती है।

ऋचीक पूछता है—सुखी है न ?

'नाथ ! जरा एक कृपा नहीं करोगे ?'

'कृपा ? क्या चाहती है ?'

'अथर्वण ! मेरे माता-पिता पुत्र-विहीन बहुत दुखी हैं। वरुण, आपने जो पुत्र रख छोड़ा है, उसे इन्हे नहीं देंगे ?'

'क्यों नही ?'—कहकर ऋचीक बैठ जाता है—'मुझे क्या खेल की तरह भरतों पर थोड़े ही राज्य करना है।'

दूसरे दिन प्रातःकाल ऋचीक वरुण की उपासना करने बैठे।

'देव ! देवाधिदेव ! प्रभो ! कृपा करो। मैं उर्व का पुत्र आपसे याचना करता हूँ। स्त्री दी, पुत्र दिया, एक वर और दीजिए, मेरी स्त्री को भ्रातृहीन मत रक्खो। कौशिकी की कीर्ति को उज्ज्वल करनेवाला एक पुत्र गाधि को दीजिए। ऋचीक विनती करता है, स्निग्ध से वह आकाश में वरुण के उदीयमान नेत्र (सूर्य) का तेज देखता है।

सूर्य उगते हैं, आकाश, हँसता है। चारों तरफ से आवाज आती हैं—'तथास्तु !' ऋचीक के हर्ष का पार नहीं रहता।

यह वरदान सुनकर गाधिराज और घोषा आनन्दविभोर हो जाते हैं। घर-घर में यह समाचार फैल जाता है—वरुण ने वर दिया है।

(७)

सरस्वती के दक्षिण तीर पर भृगु बसे, और उत्तर तीर पर, तो भरत थे ही। दोनों जातियो के बीच गाढी मित्रता हुई। दोनों ने साथ-साथ कई विजय यात्राएँ कीं, इससे भरतों की कीर्ति जितनी थी, उससे भी ज्यादा बढ़ गई।

कई महीने बीत गये। कुछ दिनों के अन्तर से घोषा और सत्यवती के पुत्र उत्पन्न हुए। भरतों और भृगुओं ने पुत्रजन्म के उपलक्ष्य में खूब आनन्द-उत्सव मनाया।

मामा-भानजे का एक ही घर में लालन-पालन होने लगा। मामा का नाम रक्खा गया विश्वरथ और भानजे का जमदग्नि।

जन्म ही से दोनों बच्चों में फर्क था। जमदग्नि अपने पिता के जैसा ही प्रचण्ड, बलवान्, स्थूल-केश और साँवले रंग का था। किसी ने इसको कभी रोते हुए नहीं देखा। वह बहुत कम हँसता और वह भी जब उसका मामा हँसता तब। मामा तो आरंभ ही से अद्भुत प्रकृति का निकला। वह बात-बात में रो पड़ता और हँसता तो सबको पागल-सा बना देता। वह थोड़ी-थोड़ी देर में पालने में से कूद-कूद कर बाहर गिर पड़ता। शरीर से भी सुडौल था। उसकी देह का रंग इतना गोरा कि जैसे दूध हो; आँखें काली, बड़ी-बड़ी और चंचल। सिर के घुँघराले बाल कन्धे पर लहराते थे। सुन्दर तो वह इतना था कि जो कोई उसे देखता, अपने पास बुलाये बिना न रहता।

मामा जल्दी ही बोलने लगा। भानजे को अपना मोटा डील सँभालना जरा मुश्किल था, इसलिए उसने देर से चलना सीखा।

बोलना आने पर भी, जहाँ तक होता बहुत ही कम बोलता। दोनों मामा-भानजे में अजीब प्रेम था। यहाँ तक कि दोनों को अलग-अलग घर में रक्खा जाय, तो बीमार पड़ जायँ; दोनों को अलग-अलग समय में खिलाया जाय, तो एक भी न खाये। आदमी अगर अलग-अलग झूले को झोंका दे, तो दोनों में से एक भी न सोये। दोनों को एक साथ सुलाया जाय, तो किसी को देख-भाल करने की जरूरत नहीं, दोनों मिलकर खूब खेलते रहें। एक को मारने पर दूसरा रोने लगता। एक हँसता, तो दूसरा बिना कारण ही किलक-किलक हँसता। घोषा और सत्यवती, दोनों बालकों को देखकर खुशी के मारे फूली न समातीं।

दोनों बालक बड़े हुए। विश्वरथ हँसता, बोलता और मनचाही चीज माँग लेता। जमदग्नि चुप बैठा रहता और मामा के सिवा और किसी से बहुत न बोलता। मामा दोनों के लिए खाने को ले आता, अकेले कभी न खाता। भानजा सब कुछ सँभाल कर रख लेता और मामा के साथ बैठकर खाता। किसी दासी के साथ झगड़ा होने पर मामा चिल्लाने लगता; पर भानजा तुरन्त उठकर चुपचाप घूँसाबाजी करने लग जाता। दोनों या तो भरतग्राम में रहते, या भृगुओं के गाँव में चले जाते और यह दोनों के माता-पिता को बहुत खटकता।

दोनों बच्चे जब छः-सात वर्ष के हुए, तो माता-पिता के सामने एक कठिनाई आकर खड़ी हुई। भरतश्रेष्ठ को राजा बनना था और भृगुश्रेष्ठ को ऋषि। दोनों का क्रम अलहदा, शिक्षा-दीक्षा निराली, और दोनों का कार्य-क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न! पर क्या किया जाय? एक के बिना दूसरा

सीखता ही न था। अन्त मे दोनों लड़कों ने आप-ही-आप एक नया रास्ता खोज निकाला। दोनों ने दोनों तरह की बातें सीखनी शुरू कर दीं। दोनों के माता-पिता को न हँसना सूझता और न रोना।

ऋचीक ने सिर हिलाया। वरुण देव को एक ही पुत्र देना था, वह आधा-आधा माँ-बेटी को बाँट दिया। वृद्ध गाधि हर्ष के मारे फूला न समाया। सोचा—बहुत खूब! एक के बदले मुझे दो पुत्र मिले। मामा और भानजा—दोनों को किसी दिन आपस में अब तक लड़ते-झगड़ते किसी ने नहीं देखा था; पर एक दिन दोनों लड ही पडे।

उस समय वे दोनों सात बरस के थे और सत्यवती के साथ भृगु-ग्राम में रहते थे। ऋचीक हर दूसरे-तीसरे महीने हजार-दो-हजार घुड-सवार लेकर मुसाफिरी करने जाया करते थे। इस समय भी वह बाहर गये हुए थे। मामा-भानजे आश्रम में खेल रहे थे। इतने में उनको हो-हल्ला सुनाई पड़ा। खेलना छोड़कर दोनों दरवाजे की तरफ दौड़ते हुए गये। एक तमाशा-सा आ रहा था। जैसे आँधी आती है, उसी तरह ऋचीक के श्यामकर्णी घोडों पर सवार सैनिक बडी तेजी के साथ बढ़े हुए आ रहे थे। सबसे आगे अथर्वण थे। उनका घोड़ा चौकड़ियाँ भरता हुआ आ रहा था। ऋचीक जब इस तरह घोडे को दौडाते थे। तब दोनों बच्चों को बड़ा आनन्द होता था। उस समय दोनों स्वय घोडे पर सवार हो, मुँह से 'टिक्-टिक्' करते हुए बोलकर कूदते थे; पर आज तो वे देखकर दग-से रह गये। ऋचीक एक अत्यन्त सुन्दर लड़की को अपने आगे घोड़े पर बैठाये हुए ला रहे थे। ऋचीक घर के अन्दर गये, तो मामा भी भानजे का हाथ पकड़

कर भीतर घुस गया। दोनों कुछ देर तक लड़की को देखते रहे। ऋचीक उस लड़की को सत्यवती को सौंप रहे थे। वे कुछ गुस्सा भी हुए। लड़की तो कुछ भी न बोलती थी और सत्यवती भी जरा घबड़ा-सी गई थी। लड़की का नाम 'लोपा-लोपा'-जैसा कुछ था। दोनों लड़के हौल से आगे आये, तो देखकर ऋचीक गुस्सा हो गया। बोला—लड़को! चले जाओ यहाँ से! तुम्हारा यहाँ कुछ काम नहीं है।—लड़के एक दूसरे का हाथ पकड़ कर कुछ देर तक चुप खडे रहे।

'पिताजी!'—विश्वरथ बोला। ऋचीक को दोनों 'पिता' कहकर पुकारते थे और गाधि को दादा कहकर—'इस लड़की को क्यों लाये?'

'तुम्हे इस सबसे क्या मतलब? चले जाओ।'

विश्वरथ का ऐसा हँसोड़ स्वभाव और खुश मिजाज था कि भड़कते हुए बडे-बड़ों के क्रोध को भी शान्त कर देता।—'तुम तो ले आये और हम क्या देखे भी नही!'

ऋचीक हँस पडे। बोले—तब देखो। तब तक मैं भरद्वाज का सामना करूँगा। उसकी क्या मजाल कि वह लोपा पर अत्याचार करे।

यह कहकर वे चले गये। दोनों लड़के वहीं खडे-खड़े उस लडकी को बड़े गौर से देखने लगे।

दोनों को कुछ विचित्र-सा मालूम हुआ। वह लड़की उनके बराबर की न थी। सत्यवती के बराबर ऊँची थी; पर छोटी-सी दिखाई पड़ती थी। घोषा माता की तरह ऊँची तो नहीं थी, इसका उन्हें निश्चय था। उनको विश्वास था, उसकी आँखें बहुत सुन्दर थीं। प्रातः-काल जैसे पानी में धूप चमकती है, उनमें वैसी कुछ चमक थी।

उसका रंग बड़ा अच्छा और लावण्यमय था। दोनों को यह पसन्द आया। उसकी आवाज भी बहुत मीठी थी, इसमें भी कुछ शक न था, पर जब वह चलती! बस, कुछ कहा नहीं जाता था, और वह अपनी बडी-बड़ी आँखों से इनकी ओर कैसी अच्छी तरह देख रही थी! ये सब बातें मामा और भानजे ने बाहर आकर अकेले में कर लीं और दोनों इस निर्णय पर आ गये कि पिताजी ने इस लड़की को यहाँ लाकर जो काम किया, इसके पहले उन्होंने ऐसा अच्छा काम कभी नहीं किया था।

परन्तु, क्या गडबड़ मामला था, यह उनकी समझ में न आया। पिताजी ने जाकर शख बजाया और तमाम रात गाँव भर में घोड़ो की भाग-दौड़ मची रही। यह सारी धूम-धाम लोपा के लिए थी, पर यह क्या? इन दोनों को भी नींद नहीं आई।

दोनों जल्दी उठे और पर्णकुटी से बाहर उद्यान में आये। देखकर दोनो अवाक् हो गये। थोड़ी दूर पर वह लडकी सरस्वती नदी के सामने देखती हुई कुछ बुदबुदा रही थी। पिताजी और उनसे मिलने के लिए जो दूसरे ऋषि आते थे, उनकी तरह उनके पीछे ये दोनो धीरे से जाकर खडे हो गये।

दोनों देख रहे थे, आँखे मींच कर और आकाश की तरफ हाथ लम्बे कर वह बुला रही थी।

'उषा! उषादेवी!'—हाँ, वह उषा देवी को बुला रही थी। क्या होगा? ऐसी लड़की को देवता के साथ बातें करते हुए उन्होंने कभी नहीं देखा था। लड़की ने आवाहन पूरा किया, और आँखे खोलकर

इनकी ओर देखा और तुरन्त हँस पड़ी। दोनों ने उसका हँसना सुना और उनकी छातियाँ धड़कने लगीं।

'क्यों, क्या देखते हो ?'—उसने पूछा। जमदग्नि ने वहाँ से भाग चलने के लिए विश्वरथ का हाथ खींचा, पर वह वहाँ से न हिला।

'तुम पिताजी और सत्या के साथ तो इतना बोलती हो, और हम से क्यों नहीं बोलतीं ?'—विश्वरथ ने कहा।

लोपा हँस पड़ी—अरे-अरे, अभी से जब तू इतना बोलता है, तो बड़ा होने पर न जाने क्या करेगा ?—वह हँसती-कूदती पास आई, और झुककर उसने विश्वरथ को पकड़ कर उसको चूम लिया। घोषा और सत्या के सिवाय दूसरों का चूमना उसे पसन्द नहीं था ; पर इस मुख, इस सुगन्ध और इस स्पर्श से वह पागल हो उठा। जब उसको सुधि आई, तब तक तो वह हँसती-हँसती चली गई थी और जमदग्नि मुँह बनाकर एक पत्थर पर बैठा था। विश्वरथ खुश होकर उसके पास गया। उस लड़की ने इसको चूमा था और वह सत्या से बहुत सुन्दर थी। उसने अभिमान से कहा—मुझे उसने चूम लिया! जमदग्नि ने ऊपर देखा। विश्वरथ ने इसके पहले कभी न देखा था, ऐसा क्रोध उसकी आँखों में था। अपने आनन्द के आवेश में इसका कारण भी वह न समझ सका। 'देख तो सही मुझे...' पर वह पूरा बोल भी न पाया, इससे पहले ही जमदग्नि ने उसे घूँसा जमा दिया। विश्वरथ दूर धूल में जा गिरा। वह 'ऊँ-ऊँ' करके रोने लगा। विश्वरथ को गुस्सा आया। वह ओंठ चबाकर जमदग्नि को मारने के लिए खड़ा
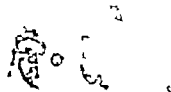
हो गया। इतने में उसने भानजे को दोनों घुटनों में सिर दबाकर जोर से रोते हुए देखा। उसके छोटे-से दिमाग में कोई बात सूझी। वह खड़ा हुआ और जो चोट लगी थी, उसे दिखाने के लिए घर के भीतर गया। लोपा सत्यवती से बात कर रही थी। उसने अपने बूते से अधिक जोर लगा कर, लोपा का हाथ पकड़ कर खींचा।

'क्या है ?'—सत्यवती ने पूछा। विश्वरथ ने जवाब नहीं दिया; पर वह लोपा को घसीट कर बाहर ले गया। सत्यवती पीछे-पीछे गई—क्या है ? विश्वरथ को आज क्या हो गया है ? विश्वरथ लोपा को वहाँ तक घसीट कर ले गया, जहाँ जमदग्नि बैठा हुआ था, और बोला—जमदग्नि को चुम्बन कर।

'क्यों ?'—लोपा ने प्रश्न किया।

सरस्वती जोर से हँस पड़ी—तुमने विश्वरथ का चुम्बन किया होगा।

'हाँ, इससे क्या ?'

'एक को चूमा है, तो दूसरे को बिना चूमे न चलेगा ! जब स्त्रियाँ आयेंगी, तब न जाने क्या होगा।'—सत्यवती और लोपा खूब हँसीं। विश्वरथ की समझ में न आया कि जब स्त्रियाँ आती हैं, तब क्या होता है ?

लोपा जमदग्नि के पास गई और उसका सिर ऊँचा उठाया और उसको चूम लिया। विश्वरथ और जमदग्नि में सुलह हो गई। दोनों में यह पहली तकरार थी। उसके बाद क्या हुआ, किसी को मालूम नहीं।

(८)

दूसरे दिन बड़ी गड़बड़ मची। अचानक कोई दो सौ अनजान

सवार आये। कहा जाता था कि वह एक राजा तथा विश्वरथ का रिश्तेदार था। उसका नाम भी बड़ा विचित्र था—'अतिथिग्व' अर्थात् अतिथि के लिए गोमांस परोसनेवाला। दोनों लड़के बहुत हँसे, अतिथिग्व के साथ दो ऋषि भी आये थे। कोई कहता था कि वे लोपा के भाई हैं। दोनों को वे आगत ऋषि पसन्द नहीं आये। लोपा उनकी थी, ये उसके भाई थे; इसलिए उनको ऐसा मालूम हुआ, जैसे वह उनके लिए कुछ कम-सी हो गई है।

मध्याह्न-काल में सब लोग पर्णकुटी में जा बैठे—ऋचीक, सत्यवती, लोपा, राजा अतिथिग्व और लोपा के दो भाई। बाहर खड़ा हुआ सेनापति किसी को अन्दर नहीं जाने देता था; पर दोनों लड़के, मामा भानजे, चोरी से पर्ण-कुटी के पिछले भाग में गये। उसके कोने का एक थोड़ा-सा हिस्सा टूट गया था। मामा और भानजा वहीं लेट गये और जमीन से सट कर देखने लगे, कि भीतर क्या हो रहा है।

एक तरफ सत्यवती बैठी थी और पास ही लोपा भी। बीच में अथर्वण और अतिथिग्व बैठे थे। दूसरी तरफ वे दो ऋषि भाई। लड़के ज्यादा तो कुछ नहीं समझे; लेकिन वे ऋषि भाई बहुत क्रोधित से दीख पड़ते थे। आर्यों के आचार के बारे में वे बार-बार बोल रहे थे। और वह भी इस रीति से कि मामा-भानजे को उनकी सूरत जरा भी पसन्द नहीं आती थी। लोपा ने साहस किया और उठकर बीच ही में खड़ी हो गई और भाइयों की ओर देखकर हँसने लगी—देवता तुम्हारे ही अकेले के नहीं। मेरे आवाहन से भी वे आते हैं।

इसके बाद बड़ा मजा आया। अतिथिग्व को गुस्सा आ गया।

उसकी मूँछें कुछ अजब ढंग से फहरा रही थीं। यह जमदग्नि ने आँखे मटका कर बतलाया। उसके बाद पिताजी बोले। वे भी जामे से बाहर हो गये थे। अब दोनों लड़के घबड़ाये। इनकी निगाह इस तरफ पड़े तो! 'पिताजी को यह ठीक न मालूम होगा'—कहकर विश्वरथ ने प्रशंसा-मुग्ध बनकर भानजे के शरीर में उँगली गड़ा दी।

'जो कुछ भी हो, चाहे जो करो; पर लोपा की इच्छा के विरुद्ध मैं देखता हूँ कि कौन उसका विवाह करता है। अगर तुमको पसन्द न हो, तो वह मेरे घर में रहेगी।'—जमदग्नि ने हर्ष से मामा की पीठ पर हाथ ठोंका।

'अगर चाहो तो आश्रम बनवा दूँगा; पर लोपा के ऊपर किसी का अत्याचार न होने दूँगा।'—सबने हार खाई। शाबाश, पिताजी! लेकिन इतने मे सत्यवती खड़ी हुई। उसकी आँखें बड़ी तेज़ हैं, आखिर खोज ही निकाला! आकर वह एकदम कान पकड़ कर विश्वरथ को और दूसरे हाथ से जमदग्नि को घसीट कर अन्दर ले गई। सब-के-सब देखते रह गये और उसने दोनों को एक-एक तमाचा जड़ दिया। लोपा वहाँ मौजूद थी; इसलिए दोनों ने रोना अनुचित समझा। उन्हें देखकर सब हँस पड़े और दोनों लड़के शर्मिन्दा होकर सत्यवती के पास बैठ गये। कुछ हर्ज नहीं। तमाचा खाया, तो क्या; लेकिन सुनने को बातें तो मिलीं! फिर पीछे कोई गुस्सा तो नहीं हुआ। पिताजी ने सब ठीक कर लिया। लोपा को वृद्ध अंगिरा के यहाँ पढने जाना था। वहीं उसका भेजना निश्चित हुआ। मामा-भानजा रात में यही बाते कर रहे थे, कि हम दोनों भी वृद्ध अंगिरा के आश्रम में जायँ तो कैसा!

उस रात को वे देर से सोये। आधी रात बीतने पर विश्वरथ उठा और जमदग्नि को हिला कर उठाया—अग्नि!

'क्यों?'

'पढ़ने के लिए जाने के बदले एक काम न करें?'

'क्या?'

'इससे ब्याह कर लें तो!'

जगदग्नि ने विचार करके सदेह प्रगट किया— लेकिन हम तो दो हैं!

विश्वरथ ने निःश्वास छोड़ा—हाँ, यह ठीक है। मैं इस बात को भूल ही गया था। यह कहकर वह करवट बदल कर सो गया।

लोपा कुछ दिन बाद वहाँ से चली गई और बडी देर तक दोनों, मामा-भानजे निःश्वासें छोड़ते हुए फिरते रहे।

(६)

कुछ महीने बाद पिताजी कहने लगे, कि इनका गुरुजी के यहाँ जाने का समय आ गया है।

अथर्वण-जैसे पिताजी हों और गाधि-जैसे दादा हों, तो फिर गुरु की आवश्यकता ही क्या है, यह उनकी समझ में नहीं आया। तमाम दिन सब दादा के पास बैठें और इनको गुरु के घर भेजने के बारे में बातें करते रहे। एक बार दोनों ने निश्चय किया कि गुरु के घर भेजें, इसके पहले ही घर छोड़ कर भाग निकलें। दोनों ने अपनी मृगछालाएँ बाँध लीं, दंड तैयार किया, और खाने को छोटी-सी पोटली बाँध ली।

दोनों ने पक्का इरादा कर लिया कि आज रात में उठकर भाग

चलेंगे। दो-चार बार इस सकल्प को अमल में लाने की कोशिश भी की, मगर रात को ऐसी मीठी नींद आई कि बीच में उठने का मौक़ा ही न मिला। आधी रात के सिवा और दूसरा समय ही भागने के लिए कहाँ था ? आखिर यह सकल्प छोड दिया गया। जाने का दिन नजदीक आने लगा। एक दिन घोषा रोती, तो दूसरे दिन सत्या। एक दिन भरतग्राम के लोग उनको बुलाते, तो दूसरे दिन भृगुगाँव के। आखिर वह दिन भी आ पहुँचा। सवेरे भरतग्राम में वे उठे, स्नान किया, दादाजी को प्रणाम किया। अग्नि की परिक्रमा कर घोषा को सिर नवाया, और जो वहाँ पर सब लोग जमा थे, उनको नमस्कार किया, फिर नाव में बैठकर नदी पार करके सामने के तीर पर भृगुगाँव में आये। घोषा और दादा भी साथ थे। सब लोग लेने आये थे। पिताजी और सत्या ने भी इनको गोद में उठा लिया और घर गये। इसके बाद सबने देवताओं की आराधना की, पिताजी ने मन्त्रोच्चार किया, अग्नि से आशीर्वाद माँगा और इनके रक्षण के लिए भृगुओं की मनौती मानी। फिर से सबको उन्होंने प्रणाम किया। घोषा और सत्या रोने लगीं। फिर दादा ने दोनों को गले लगाकर आशीर्वाद दिया।

रथ तैयार होकर आया। सत्या ने घोड़ों की पूजा की लड़कों को लेकर रथ में जा बैठी। पिताजी तो (मयूर) पर सवार थे ही। सब की । और [illegible] दोनों लड़कों की आँखों में ने [illegible] [illegible]न किया और

वेग से दौड़ाया। पिताजी और दूसरे घुड़सवार भी साथ में आये। जमदग्नि और विश्वरथ को इससे बहुत मजा आया।

(१०)

दोपहर को वे एक ग्राम में पहुँचे। उसमें भरत ही रहते थे; इसलिए विश्वरथ को देखने और अथर्वण को प्रणाम करने सारे गाँव के लोग आये। सबने खाया-पिया, थोड़ी देर आराम किया, और फिर से घोड़े जोतकर रथ तैयार किया। सत्या का इनकी ओर आँखों में आँसू भर कर देखना इनको बिलकुल अच्छा न लगा। पिताजी ने, जो कहीं दो छोटे टट्टू दिलवा दिये होते, तो उन पर बैठने का मजा लूटते!

रात को वे एक बड़े गाँव में पहुँचे। वहाँ भी लोग उनका स्वागत करने आये थे। पहले तो उन दोनों ने राजा को नहीं पहचाना; पर जब 'अतिथिग्व' नाम सुना, तो उनको उसकी याद आई—जब लोपा आई थी, तब जो राजा आया था, यही व्यक्ति था वह। यह गाँव बहुत बड़ा था। अतिथिग्व भी अच्छा लगा। उन दोनों और पिताजी को खूब आवभगत के साथ उसने भोजन कराया।

दूसरे दिन भी वे लोग वहीं ठहरे। अतिथिग्व राजा का महल बहुत बड़ा और विशाल था। सरस्वती नदी भी उसी के पास से बहती थी। मामा और भानजा, दोनों, अकेले ही घूम-घूमकर देख रहे थे। इतने में उनका नौकर बुलाने आया, और वे भीतर गये। बैठक-खाने में पिताजी और अतिथिग्व को एक आदमी से बातें करते हुए देखा। आदमी बड़ा न था। देखने में एक छोटा लड़का सा दीखता था; पर था वह बहुत गंभीर प्रकृति का।

'लड़के !'—अथर्वण ने कहा—'इन दोनों को पहचानते हो ?'

कौशिक ने सिर हिलाया।

'ये तुम्हारे गुरुजी के छोटे भाई हैं। प्रणाम करो इन्हे। छोटे तो हैं पर विद्या में इनके बराबर कोई नहीं है।'

दोनो—मामा-भानजे ने प्रणाम किया और डरते हुए उस आदमी के मुँह की ओर ताकते रहे।

'वत्सो ! शतजीवी हो !'—उन्होंने आशीर्वाद दिया।

'इनका नाम वसिष्ठ है। जब तुम्हारे समान थे, तभी सब विद्याओं में पारंगत हो चुके थे। तुम भी इनके-जैसे सच्चे विद्वान् बनो तब है !'

विश्वरथ को वह आदमी जरा भी पसन्द नहीं आया। उसको ऐसा मालूम हो रहा था कि मानो वह इन्हे अभिमान से देख रहा है।

'मेरे पूज्य भाई के सब शिष्य विद्वान् ही होते हैं, तू भी होगा न?

विश्वरथ कुछ भी न बोला और चुपचाप वैसा ही वापस चला गया। फिर उसे अतिथिग्व ने बुलाया।

'लड़के ! तू मुझे पहचानता है ?'—उन्होंने पूछा।

'हाँ !'—विश्वरथ ने कहा।

'मैं तुम्हारा कौन होता हूँ—बोलो ?'

विश्वरथ को कुछ न सूझा—तुम लोपा को लेने आये थे—यह सुन वसिष्ठ को छोड़कर सब हँस पड़े और विश्वरथ बहुत घबड़ाया

'विश्वरथ ! राजा दिवोदास अतिथिग्व तेरे चाचा होते हैं।'-कहकर ऋचीक मुस्कुराये; लेकिन विश्वरथ ऐसा घबरा गया कि नीचे

से ऊपर आँख उठाने की हिम्मत तक न हुई। दो दिन तक सबने उस गाँव में निवास किया। सब-के-सब विश्वरथ को देखने आते, और उससे कुछ-न-कुछ पूछते थे। अतिथिग्व की महिषी (रानी) भी प्रतिदिन उसे और जमदग्नि को बुलाकर सब बातें पूछती थी। बार-बार दोनों ने वसिष्ठ को इधर-उधर आते-जाते देखा था, फिर भी उनको वसिष्ठ से डर लगता था ; किन्तु जब उन्होंने सुना कि अतिथिग्व का एक पुत्र भी उनके ही गुरु के यहाँ शिक्षा पाता है, तब तो उनको बड़ी खुशी हुई।

(११)

तीसरे दिन सवेरे वे लोग रवाना हुए। अब तो रास्ता भी सरस्वती नदी के किनारे-किनारे जाता था ; इसलिए मुसाफिरी बहुत आसान थी। थोड़ी ही देर में एक गाँव आया। थोड़ी दूर पर वृक्षों का सुन्दर समूह दीख पड़ता था। सत्या ने उसे दिखाया और कहा—देखो, वह तुम्हारे गुरु का आश्रम !

दोनों लड़कों ने आश्रम देखा और यह अपरिचित स्थान देखकर उनका हृदय भारी-सा हो गया।

'सत्या !'—विश्वरथ ने कहा—'तू हमारे साथ न रहेगी ?' उसकी आँखों में आँसू भर आये।

'पागल तो नहीं हो गया है ? यहाँ तू पढ़ने-लिखने आया है। मेरा क्या काम है यहाँ ?'

विश्वरथ की समझ ही में न आया कि क्यों नहीं उसे भरतग्राम में विद्याभ्यास कराया गया ? अथर्वण अपने शिष्यों को तो शिक्षा देते थे,

तब उनको क्यों नहीं पढ़ाते ? सत्या किसी भी दिन नहीं पढ़ी, तब वह उनके साथ रहकर पढ़े, तो इसमे क्या हानि है ?

किन्तु इन सब प्रश्नों का निपटारा होने के पहले ही वृद्धों का वह समूह नज़दीक आ गया और लड़को के जत्थे को जो प्रतीक्षा करते देखा, तो दोनों यह सब भूल गये।
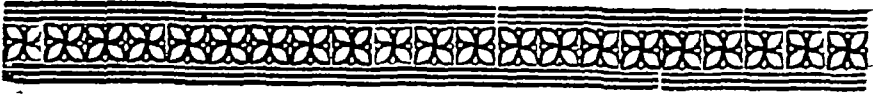
दूसरा परिच्छेद

गुरु के आश्रम में

१

रथ के घोड़े आकर थम जाते हैं। विश्वरथ और जमदग्नि रथ से बाहर अपनी गरदन निकाल कर देखते हैं और अथर्वण मयूर घोडे को रोककर नीचे उतरते हैं। आश्रम के लड़के पीछे खिसक कर रास्ता देते हैं और एक मनुष्य शीघ्रता से अथर्वण के सामने जाकर प्रणिपात करके उनके चरणों की रज अपने माथे पर चढ़ाता है।

'देखो लड़को!'—सत्या इन दोनों लड़कों के कान में कहती है—'ये तुम्हारे गुरु, मैत्रावरुण हैं!'—दोनों भय से व्याकुल हो आँखे गडा कर देखते रहते हैं।

न तो गुरु अथर्वण जितने ऊँचे हैं और न वैसे जोरावर ही। जब

अथर्वण उनसे भेंटते हैं, तब उनके प्रचण्ड हाथों में वे समा गये-से मालूम होते हैं। गुरु ने अपनी जटाएँ शख के आकार की बाँध रक्खी हैं और सूत के कपड़े की धोती पहने हैं और ऊपर से ऊन का शाल ओढे हुए हैं। अथर्वण से भेंट करने के बाद गुरु रथ के पास आते हैं। कैसा अच्छा चलते हैं! खड़म्-खड़म्!

वह आकर सत्या को प्रणिपात करते हैं—पधारो कौशिकी! मेरा आश्रम पवित्र करो। सत्या हँसते-हँसते रथ से उतरती है। 'क्या यही मेरे बालक हैं?'—गुरु सत्या से पूछते हैं। सत्या फिर हँसती है। 'मेरा वह बाल ऋषि कौन है?'—गुरु के पूछने पर सत्या जमदग्नि को दिखाती है। गुरु उसे लेकर नीचे उतरते हैं। 'क्यों बेटा! पहचानता है यह तेरा भाई है? क्यों भरत! तेरे पिता कैसे हैं?'—गुरु विश्वरथ को भी रथ से उतार लेते हैं, पर दोनो में से एक भी जवाब नहीं देता। दोनों पर गुरु की बड़ी धाक जम जाती है।

घबराते-घबराते वे दोनों सब लड़को के बीच से होकर जाते हैं; पर ऊँचे से नीचे नहीं देख सकते। बापरे! कितने लड़के हैं यहाँ! कोई-कोई तो इनकी तरफ अँगुली दिखाते हैं। इन सबके साथ कैसे रहा जायगा—यह विचार उन्हे घबराहट में डाल देता है।

आश्रम में प्रवेश करते समय इनकी दृष्टि वृक्षों पर पड़ती है, कितने सुन्दर हैं! ऐसे छटादार स्वच्छ वृक्ष इन्होंने कहीं भी न देखे थे और हिरन भी इधर-उधर उछलते दृष्टि पड़ते हैं। जगह-जगह गायें चर रही हैं और कहीं-कहीं पर घोडे भी बँधे हैं। किसी-किसी वृक्ष पर धनुष और बाण लटकाये हुए हैं।

विश्वरथ उँगली से जमदग्नि को हिरन के बच्चे दिखाता है। यहाँ रहने से मौज में तो कटेगी ; पर सत्या साथ में रहे तब !

(२)

एक विशाल पीपल के पेड़ की छाया के नीचे, घास की एक कुटी थी। वे लोग वहाँ आये। पीपल के चारो ओर थाला (आलबाल) बँधा हुआ था और वहाँ दर्भ और मृग-चर्म के आसन बिछे हुए थे। सामने सरस्वती नदी बहती थी। थाले के पास ही चार-पाँच वृद्ध मनुष्य खड़े थे, उन्होंने अथर्वण को प्रणाम किया।

उनकी पर्णकुटी से दूर, एक बड़ी-सी पर्णकुटी थी। उसमें गुरु ने अतिथियों को ले जाकर ठहराया।

थोड़ी ही देर में वहाँ एक लम्बे कद की स्त्री आई और सत्यवती से भेंटी। इसने भी दोनो को बुलाया और अपने पास बिठाया तथा उनके सिर पर हाथ रक्खा। इस देवी को सब 'भगवती' कहकर पुकारते थे। मामा-भानजे को यह स्त्री अच्छी लगी। इधर-उधर की बातें कीं और दूध पिलाया। गुरु और भगवती अपनी पर्णकुटी में चले गये, और अथर्वण स्नान-संध्या करने के लिए चले गये।

दोनों बाहर निकले और आस-पास देखने लगे।

'अग्नि, अपने घर-जैसा यहाँ नहीं है। यहाँ तो सभी घास-पात की कुटियाँ हैं।'

'लेकिन हमारे यहाँ ऐसे सुन्दर आमों के दरख्त कहाँ ?'

'वह तोता तो देख !'—दोनों देखने के लिए दौड़े। थोड़ी दूरी पर उन्हीं के जैसे (उम्र और कद में) दो लड़के खड़े-खड़े उनको

देख रहे थे। एक ऊँचा और मोटा था, वह मुस्कराता हुआ नजदीक आया।'

'तेरा नाम क्या है?'

'विश्वरथ।'—वे दोनों लड़के हँस पडे।

'पिता का नाम क्या है?'

'गाधि।'

फिर दोनों लड़के हँसे। इससे विश्वरथ को कुछ गुस्सा-सा चढ आया।

'उसके बाप का नाम क्या है?'

'कुशिक।'—कहकर विश्वरथ वहाँ से खिसकने लगा। वे लड़के फिर हँसे—उसके बाप का नाम क्या है?

गुस्से और घबराहट में विश्वरथ 'जह्नु' कहकर वहाँ से जाने लगा। पहले सवाल पूछने वाले ने तुरन्त विश्वरथ की टाँग में आड़ी टाँग मार दी और उसे जमीन पर मुँह के बल गिरा दिया। जमदग्नि ने, जो अब तक चुपचाप वहाँ खडा था, बिना कुछ कहे-सुने उस मज़ाकिया छोकरे को एक जोर का घूँसा जमा दिया कि वह तीन कुलाँट खाकर धरती पर गिर पड़ा। उसका और उसके मित्र का हँसी-मजाक सब छू-मन्तर हो गया। जमदग्नि और विश्वरथ, हाथ पकड़ कर दौड़ते-दौड़ते अपनी पर्ण-कुटी में चले आये।

पीछे से भगवती आईं। सत्यवती और वह दोनों स्नान करने गईं, सब ने भोजन किया और थके होने से सब सो गये; परन्तु विश्वरथ के दिल में चिनगारी लगी हुई थी। पहली ही बार किसी ने उसको

इस तरह पटका था। यह पहली बार उसे बहुत बुरा लगा। औरों को छोड़ उसी को टाँग क्यों मारी ? क्या अथर्वण को भी बाल्यावस्था में इस तरह किसी ने गिराया होगा ? क्या किसी ने गुरु के पैर के बीच में कभी पैर रक्खा होगा ? दाढ़ी निकलेगी, तब उसे क्यों नहीं उखाड़ फेंकेगा ! उसने जमदग्नि के पैर में टाँग क्यों मारी ? इसे बहुत दुःख हो रहा था और आँखों के आँसू जैसे-तैसे सुखाये। दोपहर के बाद डरता-डरता वह अथर्वण के पास गया।

'पिताजी !'

'क्यों, क्या है ? कह डाल, क्यों घबड़ा रहा है ?'

'मुझे यहाँ नहीं रहना है। वापस घर को चलिए।'

'अरे ! पागल हो गया है क्या ?'—अथर्वण ने हँसकर कहा। सामने बैठी-बैठी सत्यवती भी हँसती थी। उसने जरा धैर्य से बात आगे बढ़ाई—यहाँ मुझे नहीं रहना, आप पढ़ाना, मैं पढ़ूँगा।

'बेटा !'—प्रेम से उसके कंधे पर हाथ रखकर अथर्वण बोले—'तू एक दिन भरत कुल का राजा बनेगा। तुझे तो बहुत होशियार बनना है। कुछ खबर है ?'

'आप बनाइए, नहीं तो दादाजी बनाएँगे।'

'भाई ! पराये गुरु के पास बिना सीखे कुछ नहीं आता।'

'तब किसी दूसरे गुरु के पास ले चलिए।'

'मूर्ख !'—अथर्वण बोले—'तू इन गुरु को नहीं पहचानता। इनसे बढ़ कर विद्वान् महर्षि आर्यों की पाँचों जातियों के बीच कोई दूसरा नहीं है। खबर है ? इन्होंने इन्द्र-जैसे देव को भी हरा दिया ! और देख तो

सही, कितने लड़के यहाँ शिक्षा पाते हैं। इनमें दस-पाँच तो तेरे-जैसे राजकुमार होंगे। अतिथिग्व का लडका सुदास भी यहीं है।'

'यहाँ के लडके खराब हैं।'

'पर गुरुजी इतने अच्छे हैं कि थोड़े ही वर्षों में तू ऐसा विद्वान् हो जायगा!'

विश्वरथ की समझ में कुछ न आया कि क्या जवाब दूँ।

दूसरे दिन सूर्योदय से पहले उन दोनों लड़कों को उठाया, नहलाया-धुलाया और गुरुजी की वेदी के पास जहाँ वेदी थी, वहाँ ले गये।

(३)

वहाँ सभी इकट्ठे हुए थे। अथर्वण और गुरु ने अग्नि की स्थापना की, वरुण का आवाहन किया, और मंत्र-पाठ किया। विश्वरथ अपने गुरु को ही देख रहा था। जब वे मत्र पढते, तो ऐसे दीखते कि आधे नींद में हों। उसने सोचा कि मैं भी ऐसा कर सकूँ तो! इसके बाद गुरु ने दोनों लड़कों को नया मृग-चर्म पहनाया, ऊपर से मूँज का डोरा बाँधा, हाथ में दड दिया और ललाट पर भस्म लगाई। गुरु के हस्तस्पर्श से विश्वरथ कँप रहा था। पास से उनका चेहरा भी बड़ा खूबसूरत लगता था! और उनकी आँखे! कब तक ये आँखें दिखाई देती रहेगी।

सबने खाया, थोड़ी देर आराम किया और कुछ दोपहर ढल गई तो ऋचीक और सत्यवती जाने को तैयार हुए। दोनों लड़के रोये, उनको सत्यवती ने चुप रखने के लिए कहा—मैं फिर आऊँगी।

'कब?'—विश्वरथ ने पूछा।

'चौमासा बीतने पर तुरन्त।'

सत्यवती ने दोनों को गले से लगाया और उनको भगवती को सौंप दिया। गुरु आये, अथर्वण को उन्होंने अर्घ्य दिया, और आश्रम के बाहर तक सब उनको पहुँचाने गये।

अथर्वण ने लड़के के सिर पर हाथ रक्खा। सत्यवती ने उसे फिर से गले लगाया। गुरु और लड़कों ने उनको प्रणाम किया। दोनों—पति-पत्नी रथ में बैठे, और जब घोडे चलने लगे, तब विश्वरथ ने सत्यवती को रोते हुए देखा। उसकी आँखें भी डबडबा आईं और ऐसा लगता था, कि वह अभी रो पडेगा। उसने जमदग्नि की तरफ देखा, तो वह भी आँसू पोंछ रहा था। इतने में उसके कानों में गुरुजी की आवाज़ सुनाई पड़ी।

'पुत्रो! घबराना नहीं। हमलोग थोड़े ही दिनो में अथर्वण से मिलने जायँगे। चलो, कहीं पुरुष रोते हैं? स्त्रियाँ रोती हैं।'

विश्वरथ ने आँखे पोंछ डालीं। 'न, मैं नहीं रोता!'—उसने गद्गद् स्वर में कहा। सब वापस आये और जिस पर्णकुटी में अथर्वण उतरे थे, वहीं उनको गुरु ले आये।

'देखो, तुम यहाँ सोओ। मैं तुमको सहाध्यायी देता हूँ।'—कहकर उन्होंने एक से कहा—'सुदास और ऋक्ष को यहाँ भेजो।'

थोड़ी देर में दो लड़के आये। ये वही थे, जिनमें से एक शरारत ने पहले दिन छेड़-छाड़ की थी।

'देखो सुदास!'—गुरु बोले।

'जी।'

'यह विश्वरथ है। तू त्रित्सु है और वह जह्नु। और दोनों ही भरत हो। मिल-जुलकर रहियो। और यह जमदग्नि महा अथर्वण ऋचीक का पुत्र है। इसका तो वश-का-वश ऋषि है।'—जिस लड़के ने पैर मे टाँग मारी थी, उससे गुरु बोले—'ऋक्ष! तुझे भी इन सबके साथ ही रहना है। समझा?'

'जैसी आज्ञा!'

पिछले दिन की यह घटना कहीं विश्वरथ कह दे, इस डर से वह कपिला गौ की तरह शांत होकर बोला—जब आपकी आज्ञा है तब फिर क्या?

'और अजीगर्त तुमको पढाएँगे'—गुरु नें कहा—'जाओ, लड़ना-झगड़ना नहीं।'—कहकर मैत्रावरुण चले गये।

गुरु के चले जाने तक वे चारों चुप-चाप खडे रहे। उनके आँखों से ओट होते ही ऋक्ष ने मुक्का दिखाकर जमदग्नि से कहा—बच्चा! अब देख लेना।

जमदग्नि उत्तर में हँस पड़ा। इसे डर तो लगता ही न था। विश्व-रथ को पिछले, दिन की घबराहट फिर हुई। 'इसने मुझे ही क्यों पटक दिया!' ऋक्ष का बल और सुदास की तिरस्कार-पूर्ण दृष्टि देखकर अन्दर-ही-अन्दर वह डर गया, किन्तु अपने गुरु का अनुकरण करते हुए उसने सिर उठाया। आँखें बड़ी-बड़ी बनाकर उनकी-जैसी शान्त आवाज़ निकालने का प्रयत्न करते हुए कहा—देख ही रहे हैं। भरत और भृगु किसी से नहीं डरते। सहसा कह तो डाला; लेकिन कहीं अभी ऋक्ष या सुदास एक घूँसा न जमा दे, इस भय से उसका हृदय धड़क रहा था; पर उसने कुछ नहीं किया। इतना ही नहीं, बल्कि

वह डरा हुआ-सा दीख पड़ा और चुपचाप वहाँ से चला गया। विश्वरथ के आश्चर्य का पार न रहा, ऐसा क्यों हुआ ? उसने अपने शरीर की तरफ देखा—क्या वे घबरा गये ?

जमदग्नि ने पास आकर विश्वरथ की पीठ ठोंकी—शाबास मामा ! किस तरह उसने शाबासी पाई, यह तो वह समझा नहीं ; पर इसने ऐसा कुछ किया, जिससे कि वे लड़के जमदग्नि के मुक्के से घबरावे, उससे भी अधिक वह घबराया। वह खुश हुआ और हँसा।

(४)

सायकाल के समय वह अकेला गुरु की पर्णकुटी के पास अभी हाल में ब्याई हुई कुतिया के सात पिल्लों को देख रहा था। सब सफेद छोटे-छोटे खिलौने-जैसे थे। एक-दो को छोड़कर अभी उनमें से किसी की आँखें भी न खुली थीं। कुतिया निडर होकर इन नये आये हुए व्यक्तियों को देख रही थी।

एक छोटा पिल्ला आगे आया। विश्वरथ जमीन पर बैठ गया और उसे पुचकार कर बुलाने लगा। धीरे से उसने उस पर हाथ फेरा और हाथ में लेकर बगल में रख लिया। सुदर, सफेद, छोटा-सा जानवर देखकर वह खूब खुश हुआ।

एक दम किसी का चिल्लाना सुनकर विश्वरथ ने ऊपर देखा। एक छोटी लड़की गुरु की पर्णकुटी में से निकली, और इसकी ओर देखकर जोर से रो रही थी। वह छः-सात बरस की गोरी और बहुत खूबसूरत लड़की थी। वह सिर्फ कमर में गाँठ बाँध कर घँघरिया पहने थी। विश्वरथ व्याकुल हो उठा।

भीतर से भगवती आई—क्या है रोहिणी ?

'अम्बा ! यह लड़का मेरे पिल्ले को लिये जा रहा है ।'

विश्वरथ घबराकर बोला—नहीं, नहीं ।

'नहीं, कुछ नहीं ।'—भगवती ने रोहिणी से कहा—'यह तो अपना भाई है । देख वह तुझे अभी दे देगा । विश्वरथ, दे दे ।'

विश्वरथ ने तुरन्त वह पिल्ला रोहिणी को दे दिया ।

'दोनों बैठकर खेलो । तेरे बच्चों को कोई न ले जायगा । चुप हो जा ।'—कहकर भगवती अन्दर चली गई ।

विश्वरथ ने कहा—बैठ जा । इधर बैठ ।

रोहिणी बैठ गई ।

'देख, यह दूसरा पिल्ला ले लूँ ?'

रोहिणी ने सिर हिलाकर 'हाँ' कह दिया ।

विश्वरथ के पास किसी काम में न आने वाला एक डोरा था । उसने उसे लिया और जैसे रथ में घोड़े जोतते हैं, वैसे ही दो बच्चों के गले में उसे बाँध दिया और बोला—देख अपना रथ ! रोहिणी बहुत खुश हुई और हँसने लगी—हमारा रथ, हमारे घोड़े !

थोड़ी देर के बाद उसने दो घोड़ों के पीछे एक सूखा हुआ पत्ता बाँध दिया । रथ चलने लगा । दोनों खुशी के मारे कूद रहे थे ।

(५)

रात में घास की बनी हुई चटाई पर पर्णकुटी में चारों लड़के सो गये । अजीगर्त बाहर सोया । थोड़ी ही देर में सबके सब मीठी नींद में सो गये ; लेकिन विश्वरथ को नींद न आई । घोषा क्या करती

होगी ? सत्यवती कहाँ होगी ? अथर्वण फिर कब आयेंगे ? पिल्ले और रोहिणी क्या करते होंगे ? यही विचार उसके सिर में चक्कर लगा रहे थे। उसने चारों तरफ देखा। सब तरफ अँधेरा था। कोई राक्षस यहाँ आ जाय तो ? वह डर गया। ज़ोर से उसने अपनी आँखें बन्द करलीं ; किन्तु उसे नींद न आई न उसका डर ही दूर हुआ। सब-के-सब सो रहे थे। ऋक्ष की नाक में से 'घुर्र्र्-घुर्र्र्' की आवाज निकल रही थी। इससे उसे डर लगा। जमदग्नि पर उसे बहुत गुस्सा आया। वह कैसा बेफिक्र सो रहा था।

उसे बहुत सूना-सा लगा। कोई नौकर भी न था। कोई अपना आदमी न था, और इतने सब नये लड़कों के साथ कैसे रहा जायगा ? बहुत से लड़के तो उससे उम्र में बड़े और होशियार थे। यदि सब उसकी दिल्लगी करेंगे, हँसेंगे और सताएँगे, तो वह किससे क्या कहेगा ? वह रो पड़ा। घर भाग निकलने की उसकी एक बार इच्छा भी हुई ; लेकिन जाता कैसे ? इससे तो यहीं अच्छे। वह रो रहा था। भय और अकेलेपन के कारण वह जोर से रो पड़ा।

एक परछाईं दिखाई पड़ी और उसकी घबराहट बहुत बढ़ गई। वह परछाईं इधर से उधर घूम रही थी। उसने रोना रोकने के लिए बहुत प्रयत्न किया ; परन्तु सब निष्फल हुआ। परछाईं रुक गई और द्वार पर आकर खड़ी हो गई। विश्वरथ ने चीख मारनी चाही पर ; उसके गले से आवाज़ ही न निकली।

'कौन, विश्वरथ रो रहा है क्या ?'—गुरुजी के शब्द सुनाई पड़े।

'नहीं, मैं रोता नहीं हूँ।'—रोती हुई आवाज़ में विश्वरथ ने प्रत्युत्तर दिया।

'बाहर आ।'—गुरु ने आज्ञा दी। विश्वरथ डरता हुआ उठा और बाहर आया। गुरु उसकी उँगली पकड़कर बोले—क्यों रे, सुनसान लगता है?

'नीद नहीं आती।'—उसने जवाब दिया।

'मेरे साथ चल।'—कहकर गुरुजी उसका हाथ पकड़ कर, पगडंडी पर होकर, उसे नदी की तरफ ले गये। उसने सोचा—गुरुजी मुझे पीटेंगे, नदी में फेंक देंगे या कोई असुर उन्हें उठा ले जायगा। लेकिन, उसका डर जाता रहा। साथ में ही धीरे-धीरे गुरु चलते थे और उनके कारण, न मालूम कैसे साथ में निर्भयता भी चलती थी।

'विश्वरथ! बोल, कैसा राजा बनना चाहता है? गाधि-जैसा या दिवोदास अतिथिग्व-जैसा?'

विश्वरथ ने सोचा, उसके पिता वृद्ध थे और देवदास बलिष्ठ होने पर भी ऋचीक को प्रणाम करते थे।

'इन दोनों में से बड़ा कौन है?'—उसने पूछा।

'बड़ा? तेरे पिता का राज्य बड़ा है, दिवोदास शूर-वीर हैं।'

'किन्तु दोनों ही अथर्वण के पैर छूते हैं!'—विश्वरथ ने अपनी राय पेश की।

'ये तो ऋषि हैं। मालूम है? उनके पितामह तो कवि उशनस हैं। क्या तू ऋषि होना चाहता है?'

'राजा बड़ा, कि ऋषि?'

अगस्त्य ने नीचे देखा, इस बालक की मनोभावना उनको कुछ विलक्षण प्रतीत हुई—राजा पृथ्वी को पालता है, ऋषि देवता का आवाहन करता है। तुझे क्या बनना है?

विश्वरथ को कुछ सूझा नहीं—दोनों बना जा सकता है?

गुरु हँस पड़े—दोनों बनना कुछ आसान थोड़ा ही है? तू राजा बन, जमदग्नि ऋषि बनेगा। कुछ जवाब न मिला, इससे अगस्त्य ने प्रेम से पूछा—तू क्या अथर्वण-जैसा ऋषि बनना चाहता है?

विश्वरथ ने बहुत विचार किया—आप-जैसा नहीं हो सकता हूँ?

गुरु हँस पड़े—हो क्यों नहीं सकता! किन्तु अथर्वण-जैसा नहीं होना चाहता?

'अथर्वण कहते थे कि सब आर्यों में आप ही श्रेष्ठ ऋषि हैं?'

'ऐसा मत समझ।'—गुरु मुस्कुराते हुए बोले—'मुझसे कहीं बहुत बड़े-बड़े ऋषि हैं।'

विश्वरथ ने पूछा—बड़े ऋषियों को कौन बनाता है?

'वरुणदेव की कृपा हो, तो हो सकते हैं।'

'वह कैसे मिले?'

'तपश्चर्या से। तू करेगा?'

'आप करते हैं?'

'मैं नहीं करूँ, तो देव मुझ पर कृपा कहाँ से करें?'

'तो मैं भी करूँगा।'

गुरुजी कुछ न बोले, और कितनी दूर तक चुप रह कर घूमते रहे। साथ ही विश्वरथ भी तपश्चर्या कैसे की जाय, यह सोचते-सोचते उनके

साथ चलता रहा। कुछ देर में दोनों वापस आये, और विश्वरथ को तुरन्त नींद आगई।

दूसरे दिन गुरुजी ने विश्वरथ और जमदग्नि दोनों को बुलाकर अलग-अलग आचार्यों को सुपुर्द कर दिया। एक के पास उनको वाणी सीखनी थी, दूसरे से मन्त्र-विद्या, तीसरे से यज्ञ-क्रिया और चौथे से शस्त्र-विद्या, इसी प्रकार की व्यवस्था की गई और इसी तरह उनका अभ्यास-क्रम शुरू हुआ; लेकिन उस रात के बाद विश्वरथ को ऐसा लगा कि जैसे गुरु के साथ उसका कुछ खास सम्बन्ध है और वह जैसे बोलते और चलते थे, वैसेही वह उनका अनुकरण करने लगा।

(६)

उनकी पर्णकुटी में वैरभाव पैदा हो गया था। सुदास और ऋक्ष दूर-दूर रहकर उनकी ओर घूरते थे। जमदग्नि चुप्पी साधे आँखें फाड़ फाड़कर देखता था। विश्वरथ गुरु की नकल करता हुआ सिर ऊँचा उठाये आता-जाता था; लेकिन दूसरे लड़के विश्वरथ से खुश थे। वह भरतकुमार था, अथर्वण का साला था, गुरुजी का दुलारा था। भगवती उसे बुलाती थीं, इन सब कारणों से उसकी आकर्षणता अधिक बढ़ गई थी। अब तक दिवोदास का राज्याधिकारी कुमार सुदास सब में श्रेष्ठ माना जाता था। अब उसका प्रतिस्पर्द्धी आ पहुँचा। फलतः लड़कों में दो पार्टियाँ होते देर न लगी और जैसे-मतभेद बढ़ता गया वैसे-वैसे उनकी पर्णकुटी में वैर-भाव बढ़ता गया।

ऋक्ष की जीभ बड़ी खराब थी। हर बात में कुछ-न-कुछ बोल पड़ने की उसकी बुरी टेव थी। जब सब चुप-चाप सो रहते, तब भी वह

हवा से बातें करता था। अपने आप ही बड़बड़ाया करता—मैं भी कल कुत्ते को खिलाऊँगा, देख लेना, क्या बात है? मैं भी गुरु की खुशामद करूँगा। पीछे से मेरा भी कुछ और प्रभाव पड़ेगा। मैं भी कल से ऊँचा सिर उठाकर चलूँगा-फिरूँगा।—इस तरह वह डींग मारता फिरता था। इससे विश्वरथ की घबराहट का ठिकाना न रहता। गुरुजी को कोई गाली दे तो वह क्या करे? बैठा रहे या सामना कर जवाब दे? एक बार गुरु से पूछने की उसके मन में हुई।

किन्तु आश्रम में कार्य-क्रम इतना था कि समय बहुत जल्दी बीत जाता था, और घर भी बिसर गया। सवेरे सूर्योदय से पहले उठकर नदी में स्नान करना, वेद-मंत्रों का उच्चारण, हवन-विधि, धनुर्विद्या का अभ्यास, दोपहर को भोजन के बाद कुछ खेल-कूद, पीछे अस्त्र-शस्त्र चलाना सीखना, सायकाल को घोड़े की सवारी, और समय मिले तो रोहिणी के साथ भी खेलना, यदि कभी भगवती बुलावें, तो उनके साथ खाना, नहीं तो लड़कों के साथ। और जब गुरुजी प्रवचन करें, तब जितना समझ में आवे, उतना पाठ समझ लेना और रात होने पर सो जाना, यही उनकी दिनचर्या थी।

लेकिन सबसे अच्छी बात तो यह थी, कि गुरुजी कोई दिन, शाम के वक्त हवा खाने के लिए साथ में ले जाते थे और दोनों नदी-किनारे घूमते थे। ऐसे समय गुरुजी शायद ही कुछ बोलते। अक्सर वह नीची नजर करके ही चलते थे और विश्वरथ उनके पीछे-पीछे गुरुजी के सम्बन्ध में विचार करता चलता था। इस तरह गुरु दो-तीन लड़कों में से बारी-बारी से किसी को ले जाते थे; परन्तु विश्वरथ को छोड़ कर

बाकी सब लड़के बहुत बड़े थे। इस तरह जब गुरुजी उसे घुमाने ले जाते, तो वह बड़ा खुश होता।

गुरुजी कभी-कभी सुदास को भी घूमने के लिए अपने साथ ले जाते थे ; लेकिन वह ऐसा घमण्डी था, कि दिवोदास अतिथिग्व का पुत्र होने के कारण समझता था कि यह जन्मसिद्ध अधिकार तो उसी का है। जब उसका यह गर्व खण्डित हुआ, तो वह विश्वरथ की ईर्ष्या से जलने लगा।

सुदास तो एक साल हुआ, तब से पढ़ रहा था और विश्वरथ से उम्र में दो साल बड़ा था ; परन्तु जमदग्नि और विश्वरथ को अथर्वण के संस्कार प्राप्त थे ; इसलिए वाणी, मंत्रोच्चारण, तथा यज्ञ-विधि में वे सबसे अधिक पटु थे। सारे आर्यावर्त में अथर्वण बढ़िया-से-बढ़िया घोड़े रखते थे ; इसलिए उनको उनकी सेवा-सँभार और उपयोगिता का ज्ञान था।

जमदग्नि का जी धनुर्विद्या में कम लगता था ; लेकिन विश्वरथ ने थोड़े ही दिनों में सुदास की-सी योग्यता प्राप्त कर ली। ऋक्ष तो साधारणतः सभी विषयों में ठूँठा ही था, और दूसरों की निन्दा करने के सिवा उसे और किसी बात में मजा न मिलता था।

जैसे ही विश्वरथ होशियार हुआ और आश्रम के लड़कों में लोकप्रिय हो गया, सुदास और ऋक्ष उससे खूब जलने लगे। लड़कों में जो दल हो गये थे, वे बारी-बारी से मौका पाकर एक दूसरे से मार-पीट करने लगे ; पर गुरुजी की धाक के मारे यह बात बाहर न आने पाती।

(७)

कुछ महीनों के बाद अगस्त्य के आश्रम में बहुत से अतिथि लोग

आये। पुरुओं का राजा खेल, जिसके पुरोहित अगस्त्य थे, हमेशा वहाँ आया करता था; पर इस समय तो त्रित्सुओं के राजा दिवोदास अतिथिग्व और श्रृंजयों के राजा सोमक भी आये थे। साथ में भरद्वाज और वशिष्ठ भी थे। कुछ भारी मन्त्रणा हो रही थी; क्योंकि गुरुजी की पर्ण-कुटी में सब लोग एक साथ जमा होते थे और देर-देर तक बातें होती थीं।

लड़कों में तो आनन्द-ही-आनन्द छा जाता था। नये आदमी, नये घोड़े, तरह-तरह के भोजन-पदार्थ, नई बातें, पढ़ना-लिखना बंद, अब इनको और चाहिए ही क्या?

शंबर नामक एक दुष्ट असुर था। वह बड़ा भयंकर था और आर्यों की गायों और बालकों को चुरा ले जाता था। इतना तो विश्वरथ जानता था; लेकिन नई बातें सुनकर तो वह आश्चर्य में डूब गया।

शम्बर दस्युओं का राजा था। वह पत्थर के बड़े-बड़े किलों में रहता था और मनुष्यों को कच्चा-का-कच्चा खा जाता था। उसका रंग अमावस्या की अँधेरी रात्रि की तरह काला था। उसके दाँतों में से खाये हुए मनुष्यों का खून हमेशा बहता रहता था। वह आर्यों पर भूखे भेड़िये की तरह टूट पड़ता, लोगों को मारता और आश्रमों को आग में जला डालता। इन्द्रदेव की दया न होती, तो यह दुष्ट असुर सभी आर्यों को कभी का मार डालता। अगस्त्य मुनि को छोड़कर इसके सामने दूसरा कोई नहीं लड़ सकता था। पिछली बार तो सुदास के पिता भी इससे हार गये थे। अब सब मिलकर शम्बर को मारने का विचार कर रहे थे। ऐसी-ऐसी बातों से विश्वरथ की कल्पना-शक्ति उत्तेजित हो रही थी।

अब उसकी समझ में आया कि रोज रात में गुरुजी अकेले-अकेले क्या विचार करते थे। शम्बर असुर को मारने के लिए। विश्वरथ का गुरुजी के प्रति आदर का भाव बहुत अधिक बढ गया। उसने सोचा कि जो वह स्वयं जाकर शम्बर को मारकर उसका कटा हुआ सिर गुरु के चरणों में ला रखे, तो गुरु बहुत ही प्रसन्न होंगे। वह छोटा था, नहीं तो जरूर ऐसा ही करता ; पर क्या करे ?

एक दिन कुछ ऐसी ही प्रवृत्ति चल रही थी, और यह बात मालूम हुई कि सभी आश्रमवासियों को दिवोदास के त्रित्सुग्राम में जाकर रहना होगा। आश्रम में आनन्द मनाया गया। सुदास और ऋत्त के गर्व का ठिकाना न रहा ; किन्तु विश्वरथ को सुदास के गाँव में जाना अच्छा न लगा।

(८)

दूसरे दिन, सवेरे बडे पीपल के थाले पर गुरुजी के साथ तीनों राजे, भरद्वाज और वशिष्ठ बैठे हैं। एक ओर भगवती और आश्रम की दूसरी स्त्रियाँ बैठी हैं। सब लडके और आचार्य लोग खड़े हुए हैं। दो लड़के आगे बढते हैं, उम्र दोनों की बीस-बीस की है। दोनों के हाथों में लम्बी-लम्बी तलवारें हैं। गुरु की आज्ञा होते ही दोनों आगे बढ़कर एक दूसरे पर वार करते हैं। सामनेवाला तलवार के वार को अपनी ढाल पर झेलता है। इस तरह कितनी देर तक दोनों लड़ते हैं ; पर थकते नहीं। अन्त में एक के हाथ से तलवार छूट पड़ती है। विजेता आकर गुरु के चरणों में गिरकर प्रणाम करता है और गुरु धन्यवाद देते हैं।

इस तरह आयुध-कुशल शिष्य अपनी होशियारी दिखाते हैं।

धनुर्द्धारी आते हैं और घोड़े पर सवार हो, दौड़ते हुए, सुई को, नीचे देखकर निशाना मारने की अपनी दक्षता दिखलाते हैं। बहुत दूर, एक झाड़ पर छः भिन्न-भिन्न रंगों की मटकियाँ एक डोरे से बाँधकर डाली से लटकाई गई हैं और वेग से घूमती हुई उन मटकियों में से जिस रंग को गुरु कहते हैं वे उसी पर निशाना मारते हैं।

अन्त में छोटे लड़कों की बारी आती है। गुरु सुदास को बुलाते हैं। दिवोदास खुश होकर अपने पुत्र का परिचय सबको देते हैं। अपना छोटा-सा तीर लेकर वह निशाना लगाता है। स्थिर मटकी पर बाण मारने की गुरुजी आज्ञा देते हैं। सुदास तीर छोड़कर उस मटकी को फोड़ डालता है और सब उस पर धन्यवाद की वर्षा करते हैं।

अगस्त्य अब यह प्रदर्शन बन्द करवाना चाहते हैं; पर उनकी दृष्टि विश्वरथ पर पड़ती है। उसकी आँखें भी मानो गुरु से प्रार्थना कर रही हैं, कि 'मुझे मत भूल जाइए।' तीन मास में इस बालक को क्या आयगा, कि वह परीक्षा दे सके; किन्तु उसकी यह मौन याचना अगस्त्य के हृदय तक पहुँच गई। इतने छोटे बालक की विचार-सृष्टि से वे मुग्ध हो गये।

'राजन्! क्या अब मैं अपने एक नये शिष्य का परिचय कराऊँ? वह कौशिकराज गाधि का पुत्र है। विश्वरथ, यहाँ आ बेटा!'— सभी भरत समान प्रतापी प्रजा के भावी राजा को देखते हैं। विश्वरथ आगे आता है और सब थोड़ी देर के लिए चुप हो जाते हैं। उम्र के लिहाज से कद में यह ज़रूर ऊँचा है। शरीर सुडौल और गठन-दार, रंग भी गौर वर्ण के आर्यों से और भी गोरा एवं मोहक है।

इसका मुख लड़की की तरह मुलायम होने पर भी उसकी रेखाओं में रोबदाब की काफी झलक है। उसके सुन्दर ओंठ बन्द हैं। उसकी छोटी-सी सीधी नाक घबराहट को दबाती हुई क्षोभ और उत्साह से फूल रही है। उसकी सुन्दर तेजस्वी आँखें स्थिर हैं,मानो पृथ्वी के उस पार देख रही हैं। ललाट पर एक लता की सुकुमार लम्बी टहनी के कोंपल के जैसे लम्बे लच्छेदार बाल हवा से फर-फर उड़ रहे हैं। उसका मृगचर्म भी और सब से कुछ भिन्न प्रकार का बँधा हुआ है। हाथ में उसके तीर-कमान है। वह जोश के मारे जमीन पर कदम भी नहीं रख पाता है, मानो वृत्रासुर के मारने के लिए बाल इन्द्र आये हैं—ऐसा ही वह सबको दीख पड़ता है।

जमदग्नि भगवती के पास दौड़ा हुआ जाता है और उनके कान में कुछ कहता है—'भगवती! यह तो घूमती हुई मटकी पर निशाना लगाता है।' भगवती आश्चर्य से देखती हैं। इतना नन्हा-सा लड़का मटकी का निशान कैसे मार सकता है? ना, ना। जमदग्नि चुप रहने-वाला न था। बोला—'उसे आता है। मैं कहता हूँ, उसे आता है।' भगवती जमदग्नि के सीधे स्वभाव और सत्यवाणी से परिचित हैं, तिस पर भी उन्हें विश्वास नहीं होता। कैसे आ सकता है? जमदग्नि जिद करता है—'यह रोज आचार्य के पास छुक-छिपकर सीखताहै।'

विश्वरथ आकर गुरु के पैरों पड़ता है, मानो कामदेव जगत् को जीतने से पहले बृहस्पति के चरणों में गिरता हो, इस तरह। दिवोदास सुन्दर सुकुमार बालक को देखता रह जाता है। गुरुजी इस के घुँघ-राले बालों पर हाथ फेरते हैं—'भरत! किसका निशाना साधेगा?'

'जिसके लिए गुरुजी आज्ञा करें!'—सब जोर से हँस पड़ते हैं।

'उस मटकी को निशाना लगायेगा?'—दिवोदास पूछते हैं।

'जो आज्ञा!'

'बहुत ठीक, तब उस लाल रंगवाली मटकी पर तो निशाना मार!'—अगस्त्य हँसकर कहते हैं।

भगवती बोल उठीं—'मैत्रावरुण!'

'क्यों?'

'इस तरह लटकती हुई मटकी पर तीर मारने से विश्वरथ की क्या परीक्षा हुई?'

'तब?'

'मटकियाँ तो घूमती हुई होनी चाहिए।'

सब हँस पड़ते हैं। गुरु भगवती के शब्दों का गुह्य अर्थ कुछ समझते हैं—'भरत, घूमती हुई मटकी को तीर मारेगा?'

'जो आज्ञा!'—कुछ लज्जित-सा होकर विश्वरथ कहता है। गुरु की आज्ञा हुई। धनुर्विद्या के आचार्य मटकियों को धीरे से घुमाते हैं।

'जो सफेद मटकी है—उसे मार, देखें!'—आज्ञा होती है।

(९)

ओठ पर ओठ बन्दकर विश्वरथ आगे आता है। छोटा-सा धनुष शान के साथ वह अपने कन्धे से उतारता है। तीर खींचकर प्रत्यंचा पर रखता है। नीचे की तरफ देख कर बायाँ पैर जमाता है।

वह अपनी आँखें मींच लेता है। गुरुजी ने एक बार जो कहा था, वह इसे याद है कि कोई कार्य करने से पहले वरुणदेव का स्मरण करना चाहिए।

बन्द की हुई आँख में उसे वरुणदेव की आँख—सूर्य का अरुण वर्ण का प्रकाश दीखता है। उसके हृदय में श्रद्धाभाव उत्पन्न होता है। उसकी सहायता करने को देवों में श्रेष्ठ आ गये हैं। वह आँखें खोलता है; परन्तु उपस्थित जनसमूह और गुरुजी का सान्निध्य उसे नहीं दिखाई पड़ता, सिर्फ धीरे-धीरे घूमती हुई मटकी दीख पड़ती है। धीरे से क्यों? तुरन्त वह धनुष साधता है और भरत-कुल को शोभा देनेवाले गर्व से वह आज्ञा करता है—'आचार्य! जल्दी घुमाइए मटकी को।'

उन्हें खबर नहीं कि वह बडी आसानी से निशाना मार सकता है; इसलिए गुरु ने मटकियों को धीरे से घुमाने की आज्ञा की है। फिर भी आचार्य को इस शिष्य में श्रद्धा है। वह आज्ञा की परवा न कर शीघ्रता से डोरी को घुमाते हैं।

पलक मारते धनुष स्थिर हो जाता है, पल-भर में तीर खिंचता और छूटा हुआ बाण घूमती हुई मटकियों में से सफेद रंग की मटकी को तोड़ देता है। हरएक दर्शक किंकर्तव्य विमूढ़ की तरह बैठा का बैठा रह जाता है।

गुरु अगस्त्य—आर्य-ऋषियों में महान प्रतापी, मौन व्रत जिनको अत्यन्त प्रिय है, अनेक राजाओं और पुरोहितों पर तप तथा वाणी से जो शासन करते हैं—पल-भर में अपनी स्वस्थता खो बैठते हैं। कभी किसी ने नहीं देखी, ऐसी आतुरता से दौड़ते हैं और विश्वरथ को जमीन पर से उठाकर अपनी छाती से लगा लेते हैं।

विश्वरथ हर्ष के उन्माद में बेभान हो जाता है। 'धन्य है, धन्य है!'

को छोड़कर दूसरा शब्द ही उसको नहीं सुनाई पड़ता। गुरु के हाथों में से छूटकर वह भगवती के चरणों में गिरता है। भगवती की आँखों से बराबर आँसू गिरते हैं।

दर्शकों की भीड़ बिखर जाती है। सब कोई विश्वरथ को बधाइयाँ देता है। आचार्यगण बारी-बारी से उसे खुशी के मारे उछल-उछल कर भेंटते हैं और उसके मित्रों के मिजाज का तो पार ही नहीं है। वह अपनी पर्णकुटी मे जाता है।

ऋक्ष कोने में बैठा-बैठा उसकी राह देखता है और जैसे ही वह आता है, वैसे ही वह उसके गले लगकर फूट-फूटकर रो पड़ता है। उस समय विश्वरथ को क्या करना, क्या कहना—यह कुछ नहीं सूझ पड़ता। अन्त में वह और जमदग्नि बैठते हैं। इन दोनों के बीच में मूक भाषा में भाव विनिमय हमेशा चलता है। दोनों एक दूसरे के कन्धे पर हाथ रखकर चुपचाप बैठे रहते हैं।

कुछ देर बाद जमदग्नि बोलता है—मामा! जब हम बड़े होंगे, तब सबसे ज्यादा जबरदस्त ताक़तवर होंगे।

दोपहर बाद गुरुजी विश्वरथ को बुला भेजते हैं। पर्णकुटी में अगस्त्य और भगवती दोनों ही बैठे हुए हैं।

'विश्वरथ!'—उसकी पीठ ठोंककर अगस्त्य कहते हैं—तुझे क्या खबर कि तू ऐसा चोर है! तू ने मुझे बताया भी नहीं कि तुझे इतना आता है!

'मुझे भी इसकी खबर न थी!'

'यह विनय तो तेरे योग्य ही है। भरत! तू राजाओं में श्रेष्ठ होनेवाला है।'

'भगवन्! वरुणदेव ने मेरी मदद की।'

'वरुणदेव ने!'—आश्चर्य चकित होकर गुरु ने कहा।

'आप ही ने एक रोज कहा था न कि जब वरुणदेव आते हैं, तभी आप कुछ उत्तम कार्य कर सकते हैं।'

'जब सुदास बाण मार रहा था, तब मैंने वरुणदेव से कहा कि गुरुजी से कहो कि मुझे बुलावें, और तुरन्त आपने मुझे बुलाया। फिर तीर खींचते समय भी वरुण आये—'

'एँ! तू यह क्या कहता है?'

'हाँ, मैंने उनकी प्रतापी दृष्टि खुद अपनी आँखों से देखी। मुझसे कहा कि मार, इतने में मैंने तीर मारा और उसी से सही निशाना लगा।'

गुरु थोड़ी देर तक देखते रहते हैं और कुछ विचार में अपना सिर हिलाते हैं।

'सत्य बात है। यह सारा प्रभाव तो ऋत के पति वरुण का ही है।'

'भगवन्! इन सब राजाओं का, अथवर्ण का, भरद्वाज का, आपका, सबका?'

'हाँ, पृथ्वी पर या अन्तरिक्ष में एक भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो इनके प्रभाव के बिना हिल सके!'

'तब ऋषियों को कोई मारता नहीं, यह भी वरुणदेव के कारण!'—विश्वरथ गहरा विचार करके पूछता है।

'हाँ।'

'इनकी कृपा कैसे हो?'

'ऋत के दर्शन करने से।'

'तब ऋत के दर्शन कैसे हों?'

'सत्य और तप से।'

जैसे वह इसका रहस्य समझ गया हो। उसने अपना सिर हिलाया—तब भगवन्! आपको जब वरुणदेव मिलें, तब ऐसा न कहिए उनसे कि विश्वरथ को ऋत के दर्शन कराइए?

'जरूर कहूँगा।'—आज गुरु को बार-बार हर्ष के आवेश में आता हुआ देखा था—'जरूर कहूँगा। पुत्रक! तू ही मुझे और भरतों को तारेगा, ऐसा जान पड़ता है।'

अलौकिक गाम्भीर्य से वह देखता रहा।

'मैं वरुणदेव से पूछूँगा कि सबको किस रीति से तारूँ।'

(१०)

दूसरे दिन सूर्योदय से पहले अगस्त्य का सारा आश्रम खाली हो गया। पहले राजा घोड़ों पर, और ऋषि तथा भगवती रथ में निकले। सुदास, विश्वरथ, जमदग्नि और कुछ बड़ों के लड़के भी रथ में निकले। सारा सामान-असबाब छकड़ों में भरा गया और वह बीच में रक्खा गया। आस-पास गायों के झुण्ड रखने में आये, और तब घुड़सवारों ने चारों तरफ से घेरा लगाया। बहुत से छोटे-छोटे लड़के गाड़ियों में बैठे, बडे जो थे, वे पैदल ही चलने लगे। इस तरह सारा आश्रम मुसाफिरी के लिए निकला।

लड़कों को बड़ी मौज थी, आगे जाकर रथवाले थम जाते। पीछे से गाड़ियाँ धीरे-धीरे आतीं। कभी गाय बैठ जाती, तो दस-पाँच आदमी

जाकर उसे उठाते। कभी कोई छोटा लडका गाय पर चढ़कर बैठ जाता, तो दूसरा दौडकर उसे उतारता। कभी चार-पाँच गायें जिद पकड़ कर भाग जातीं, तो उन्हें पकड़ने के लिए घुड़सवार दौड़ा-दौड़ी मचा देते और लडके हँसी के मारे लोट-पोट हो जाते। कोई गाय ज़रा भी दौड़े, तो सभी हैरान हो जाते।

कुछ दिन चढा, तो एक पेड़ के नीचे घोडे और ढोर छोड़ दिये गये। फिर सब नदी में स्नान करने उतरे। कोलाहल का कुछ पार न था। एक तरफ स्त्रियाँ नहातीं, तो दूसरी तरफ लड़के। कुछ दूर घोडो को मनुष्य नहलाते और गायें तथा बैल पानी पीते।

लड़कों की आनन्द-किलोल का पार न था। सारा आश्रम इस तरह यात्रा के लिए निकले, यह अनुभव जितना नया था, उतना ही आनन्दप्रद भी था। कोई तैरता, कोई डुबकी मारता, कोई कीचड़ फेका-फेंकी करता। सुदास और ऋक्ष अच्छी तरह तैरना जानते थे। वे तैरते- तैरते आगे बढ़ गये। विश्वरथ और जमदग्नि को तैरना अच्छा नहीं आता था, इससे छाती भर गहरे पानी में खड़े रहकर नहा रहे और खेल रहे थे। पास ही में कुछ-एक आचार्य भी नहाते थे।

धनुर्विद्या का आचार्य भद्राक्ष वहीं नहा रहा था। उसकी दृष्टि सुदास पर पड़ी। जरा गहरे पानी में तैरता-तैरता वह ऋक्ष से कुछ विश्वरथ के बारे में कह रहा था। भद्राक्ष ने कल से सुदास का द्वेष भाँप लिया था, इसलिए वह बड़े गौर से देखता रहा।

एक दम सुदास डुबकी मारकर अदृश्य हो गया। भद्राक्ष तैरकर आहिस्ते-आहिस्ते पास गया। सहसा विश्वरथ की चीख सुन पड़ी।

लड़कों में हाहाकार मच गया। मानो कोई मगर विश्वरथ को पानी में खींच ले गया है, इस तरह वह अदृश्य हो गया। बड़े बूढ़े दौड़े हुए आये। भद्राक्ष भी दो हाथ फेंककर उसी जगह आ गया और गोता मारकर अन्दर गया। थोड़ा-सा पानी उछला और वह विश्वरथ को लेकर ऊपर आ गया। सुदास भी आकुल-व्याकुल जल के ऊपर दीख पड़ा।

इस आवाज से खिंचकर, अगस्त्य और दिवोदास किनारे पर खड़े थे। उनके चरणों के आगे भद्राक्ष ने शीघ्र आकर बेहोश विश्वरथ को रख दिया—'भगवन्! आज सुदास ने विश्वरथ को डुबो दिया होता।' कहकर वह सुदास को लाने गया।

अगस्त्य तुरन्त घुटने के बल बैठकर मंत्र पढ़ने लगे। उन्होंने विश्वरथ का पेट मसला, उसके पैर उठाकर पेट पर दबाये, और वरुण-देव का आवाहन किया।

'राजा वरुण! मैं मैत्रावरुण! आपको बुलाता हूँ। हे जलपति, समुद्र के शासक! आओ। अपने पुत्र को बचाओ। इसको फिर प्राण दो। देव! मैं अगस्त्य आपको बुलाता हूँ।'

मंत्रोच्चारण करते-करते अगस्त्य जैसे कुछ ध्यानमग्न हों, इस तरह बोलने लगे। विश्वरथ ने उगलकर जैसे ही अन्दर का पानी निकालना शुरू किया, गुरुजी और भी झपाटे से मन्त्र पढ़ने लगे, एकदम विश्वरथ ने साँस ली और आँखें खोलीं।

'देव! वरुण! कृतार्थ हो गया, मैं तुम्हारा पुत्र'—कहकर अगस्त्य विश्वरथ को अपने कंधे पर रखकर, एक वृक्ष के नीचे ले गये। दिवो-

दास के क्रोध का पार न रहा। थर-थर काँपते हुए सुदास को अपनी तरफ खींचा, और जोर से गाल पर दो-चार तमाचे लगा दिये और उसे वशिष्ठ को सौंप दिया और आज्ञा दी—इस बन्धुघाती के हाथ बाँध दो।

थोड़ी देर में सब मामला शान्त पड़ गया और सब ने भोजन किया। सिर्फ़ सुदास को ही एक दरख्त से कसकर बाँध दिया था। एक तरफ विश्वरथ निश्चल होकर सो रहा था।

बड़ों को मालूम हुआ कि वरुणदेव की कृपा न होती, तो आज भारी विपत्ति आ पड़ती। अगस्त्य तो बिना कुछ बोले ही बार-बार आकाश की तरफ देखकर प्रार्थना करते रहे।

'मैत्रावरुण! अब हमें कूच करना चाहिए।'

'नहीं, अभी देव ने आज्ञा नहीं दी।'

सभी जानते थे कि अगस्त्य वरुण की आज्ञा के बिना एक डग भी आगे नहीं रखते।

'सुदास को खोलकर यहाँ लाओ तो भद्राक्ष!'—अगस्त्य ने कहा। भद्राक्ष सुदास को खोलकर ले आये।

'मैत्रावरुण!' दिवोदास ने कहा—'इसे ऐसा दण्ड दो कि हमेशा याद करे। इस मूर्ख का सोचा हुआ कहीं हो जाता, तो आज शंबर से लड़ने के बदले भरत और भृगुओं में द्वन्द्व युद्ध मच जाता!'

अगस्त्य बड़ी कड़ाई के साथ देख रहे थे—'सुदास!' —सुदास थर-थर काँपता हुआ खड़ा था।—'बोल, तुझे यह क्या सूझा?'

सुदास क्या जवाब दे? अगस्त्य की भौंहें टेढ़ी होकर ऊपर तन

गई—'खबर है, तू विश्वरथ को मारता, तो क्या होता ?'—उनकी आवाज़ भयंकर हुई !

'क्या दण्ड दूँ तुझे ?'

एक निर्बल धीमी आवाज़ आई—'गुरुदेव ! इसे कोई दण्ड न दीजिए।'—भूमि पर बैठते हुए, जाग्रत विश्वरथ ने कहा—'मैं जब पानी में घसीटा गया, तो सहस्र सूर्य-जैसा प्रकाश मैंने देखा। उस तेज में वरुणदेव विराजते थे, उनके मैंने दर्शन किये। इस सुदास को दण्ड मत दीजिए।'— अगस्त्य ने भरद्वाज की तरफ देखा, और दोनों को एक ही विचार आया—'यह बालक है या महर्षि ?'

'जा सुदास ! विश्वरथ कहता है, इसलिए आज तुझे छोड़ देते हैं। राजन् ! वरुणदेव की आज्ञा हो गई है, चलो कूच करो यहाँ से।'

सुदास ने अपने को दण्ड से बचानेवाले की तरफ द्वेषपूर्ण दृष्टि से देखा।

(११)

सब आकर वशिष्ठ और भरद्वाज के आश्रम में उतरे, और दो-तीन दिन बाद विश्वरथ और जमदग्नि को भरत-ग्राम मे छोड़ आये। त्रित्सुओं ने, सृञ्जयों ने और पुरुओं ने दुष्ट शम्बर के साथ लड़ाई ठान रक्खी थी। उस युद्ध की उड़ती हुई खबरें छः महीने तक वे लोग सुनते रहे। अगस्त्य मुनि ने किस तरह मरुतों की सहायता पाई, दिवोदास ने किस प्रकार गढ़ जीता, खेल ने किस तरह शम्बर के साथ युद्ध किया, सोमक को किस तरह शम्बर ने फँसाया, ये सब खबरें जाने-आनेवाले मुसाफ़िर ले आते थे, उन्हे सुनकर लड़कों का खून

जोश के मारे उबल उठता। उन्होंने एक बार गाधि और अथर्वण से कहा कि हमें भी युद्ध करने जाना चाहिए। गाधि ने कहा—'मैं तो बूढा हो गया। विश्वरथ जब बड़ा होगा, तब लड़ेगा।' अथर्वण तो खूब हँसे—मेरे घोडे ऐसे फेंक देने को नहीं हैं।

जब विश्वरथ हिचकिचाता, तब जाकर वरुणदेव से पूछता कि मुझे क्या करना है; पर देव कुछ जवाब नहीं देते। उसने इसी से सन्तोष कर लिया कि जब बडे होंगे, तब देखा जायगा।

चौमासा बीत गया, तब अगस्त्य का निमन्त्रण आया। सब कुछ शान्त हो गया है, और लड़कों को गुरु बुलाते हैं।

तीसरा परिच्छेद

भरतों का राजा विश्वरथ

(१)

आज भरतों के ग्राम में मातम छाया हुआ है। लोग अपने-अपने घरों से निकल-निकलकर राजा के महलों की ओर भागे हुए जा रहे हैं। सबके मुख पर शोक छाया हुआ है। बहुत-सी स्त्रियाँ भी विलाप करती, आँचल से आँसू पोंछती हुई उसी तरफ जा रही हैं। सामने नदी-तीर से नावों में बैठ-बैठकर भृगु भी दौड़े हुए आ रहे हैं।

भरतों पर विपत्ति आकर पड़ी है। कुशिक के पुत्र और भरतों में श्रेष्ठ गाधि आज यमलोक को सिधार गये हैं।

चालीस वर्ष तक अखंड रूप से इस भरतश्रेष्ठ ने भरतों की उज्ज्वल कीर्ति को और भी अधिक उज्ज्वल बनाया। युद्धों में विजय पाने की

अपेक्षा लोगों के हित को इन्होंने अपने जीवन में सर्वोपरि स्थान दिया और इसके फलस्वरूप सारे सप्तसिन्धु में भरतों-जैसी विशाल तथा समृद्धिशाली एक भी जाति नहीं थी। गाधि के सात्विक स्वभाव के कारण बहुत-से राजाओं के साथ उनकी मित्रता थी और शम्बर-जैसा दुष्ट अनार्य भी भरतों पर जोर-जुल्म करने की हिम्मत नहीं कर सकता था।

आज ७० वर्ष हुए, महा अथर्वण-जैसे प्रतापी ऋषि को इन्होंने अपनाकर, उन्हें नदी के सामने तीर पर बसाया था, इससे भरतों का युद्ध-कौशल भी सबल बना।

आज इस महात्मा ने देह छोड़ दी है और भरत तो मानो उनके अपने पिता ही मरे हों, इस तरह की दुःख-गर्भित व्याकुलता का अनुभव कर रहे हैं। राजा हरएक के साथ मैत्री-भाव से बरतते थे। इससे प्रत्येक व्यक्ति आज उनके जीवन-प्रसंगों की याद करके रो रहा है।

महल में इस समय शोक छाया हुआ है। श्वेत बालों से गौरवान्वित घोषा अपने पति के शव के पास बैठी है। सामने सत्यवती रो रही है। सेनापति प्रतर्दन कुछ लोगों के साथ अग्नि-संस्कार की तैयारी में लगा हुआ है।

अथर्वण इसी समय न जाने किस ओर निकल गये हैं। वे कब वापस आयेंगे, किसी को इसका पता नहीं। विश्वरथ अगस्त्य के आश्रम में है। उसे बुलाने के लिए कल ही घुड़सवार रवाना हो चुके हैं।

इतने में अथर्वण का मुख्य शिष्य वामदेव आ पहुँचता है और भरतों के अगुआ—मघवन—गाधि के शव को बाँस की अरथी पर बाँधकर ग्राम से बाहर नदी-तीर पर श्मशान में ले जाते हैं। पीछे से

रोती, हाय-हाय करती, माथा और छाती कूटती घोषा, सत्यवती तथा दूसरी स्त्रियाँ आ रही हैं और ग्राम के लोग भी रोते-बिलखते उनका साथ देते हैं और दूसरे अग्रणीय योद्धा गाधि के शव को सरस्वती में स्नान कराकर चिता पर सुलाते हैं। उनके वस्त्राभूषण भी उन्हीं के साथ रख दिये जाते हैं और उनके हाथ में उनका धनुष-बाण भी दे देते हैं।

इसके बाद घोषा आँसू पोंछ, चन्दन चर्चित हो, चिता पर चढ़कर शव के पास लेट जाती है। वामदेव मन्त्र उच्चारण करते हैं—

'मृत्यु! जा, दूसरे रास्ते चली जा, दूसरे देवों से भिन्न मार्ग से जा! तुझे आँख और कान हैं। मैं तुझसे कहता हूँ, जा, अपने रास्ते जा! हमारे पुत्रों को पीड़ित मत कर।

'जो जीते हैं, वे सब मरे हुए लोगों से पृथक् हो जाते हैं। देव हमारा आवाहन सुनेंगे। नृत्य और हास्य की तरफ चलो! मृत्यु! मैं तेरे आसपास पत्थर की दीवार बाँधता हूँ। घोषा! माता! उठो! जीवित सृष्टि की ओर पीछे फिरो! पुत्रों में, पौत्रों में, लौटो। जिसे तुमने वरा था, वह अब निश्चेष्ट पड़ा है। उठो और पीछे आओ।

'इनके हाथ से मैं यह धनुष-बाण ले लेता हूँ। यह हमको शक्ति, तेज और प्रभाव दे। इसके द्वारा हम अपने शत्रुओं का नाश करेंगे।'

घोषा चिता पर से उठ जाती है। वामदेव धनुष-बाण उठा लेते हैं और शव को सम्बोधित कर कहते हैं—जाओ! सिधारो! जिस मार्ग से अपने पूर्वज गये हैं उसी मार्ग से। वहाँ दो देदीप्यमान राजा यम और दिव्य वरुण, स्वधाम में आनन्द से बैठे हैं। तुम उनसे मिलना।

पितरों के साथ मिल जाओ और यम के साथ मिलना। राजन्! श्रेष्ठ स्वर्ग में विहार कर तेजोमय शरीर से फिर यहीं पीछे आ जाना।

'चितकबरे, चार आँखोंवाले सारमेय को फाँदकर राजन्! मार्ग में चले जाओ और सर्वदर्शी पितरों के साथ जो राजा यम के साथ आनन्द भोगते हैं, तुम जाकर मिलो।'

इसके बाद प्रतर्दन एक गौ काटते हैं, और उसके चर्म में शव को लपेट कर अग्नि-सस्कार करते हैं।

वामदेव अग्नि का आवाहन करते हैं—अग्नि! इन्हें बिलकुल जलाकर भस्म न करना। इनको तू पितरों के पास ले जाना।

ऋषि का वचन मानकर अग्नि गाधि को पितृलोक के पथ पर ले जाती है, और राजा यम हर्षित होकर उनका सत्कार करते हैं।

चिता की अग्नि भभककर जल उठती है। शव जलकर राख हो जाता है। वामदेव अग्नि को शान्त करता है—अग्नि! जाओ! जिस स्थान को तुमने जलाया है, उस पर पुष्प उगाना। लहलहाते वृक्षो! इस अग्नि को प्रसन्न रखना।

गाधि की राख को वामदेव समेटते हैं, और उसे ज़मीन में गाड़ देते हैं। सब स्त्री और पुरुष आँसू बहाते हुए पीछे आते हैं।

(२)

एक महीना हो गया। अब भरतकुल का राज्य किस तरह चलाया जाय, यह प्रश्न सभी को घबराहट में डाल रहा था। घोषा ने चालीस वर्ष हुए, यहीं रहकर राज्य किया था; इसलिए अब भी राजमाता बनकर राज्य करने का उसका इरादा था। पुत्र अब यहीं रहे और

जमाई उसे राज-काज करना सिखाये, यही इच्छा उसकी थी। अथर्वण भी आ गये थे ; पर उनकी आयोजना कुछ और ही थी। बचपन से आप एक जगह कभी रहे न थे। साल में छः महीना अपने घुड़सवार लेकर बवण्डर (वात-चक्र) की तरह सारे सप्तसिन्धु में ये चक्कर लगाया करते थे। किसी की दवा कर आते, किसी को मंत्र-सिद्धि दे आते और जहाँ कहीं अन्याय होता दीखता, वहाँ अपनी धाक से न्याय दिलाते थे। इनके कारण बहुत-सा अत्याचार बन्द हो जाता था और सभी आर्य जातियाँ इन पर श्रद्धाभाव रखती थीं। ये इस कार्य-क्रम को बदलने को तैयार न थे। यह उदार, खरे स्वभाव के और कुछ उग्र थे। इन्होंने राज्य न किया था और न करने की इच्छा ही थी। इनकी यह योजना थी, कि विश्वरथ यहीं रहे, अगस्त्य को अपना पुरोहित बनाये और राज्य चलाना सीखे।

विश्वरथ का विचार कुछ जुदा ही था। कुछ वर्षों से अगस्त्य का आश्रम दिवोदास राजा के तृत्सु-ग्राम की सीमा पर था। दिवोदास ने अगस्त्य की मदद से थोड़े ही वर्षों में बड़ा प्रताप प्राप्त किया था और उसकी बढ़ती हुई सत्ता के कारण उसके ग्राम का प्रभाव था।

विश्वरथ अगस्त्य और दिवोदास को बहुत प्यारा था। इसे सीखने को बहुत कुछ था ; इसलिए दो-चार वर्ष अथर्वण की मदद से घोषा राज्य करे और यह तृत्सु-ग्राम में ही रहे, ऐसी उनकी इच्छा थी। प्रतर्दन और वामदेव की सलाह तो घोषा के अभिप्राय से मिलती थी और इस मतभेद में कौन-सा रास्ता निकाला जाय, यह निश्चित न हो सकने से अगस्त्य को यहीं बुला लिया गया था। वे भी उसी दिन आ पहुँचे थे।

घोषा खिन्नता के अवतार-सी एक तरफ बैठी थी। पास में सत्यवती थी। बीच में अथर्वण और अगस्त्य बैठे हुए थे। सामने विश्वरथ, जमदग्नि, प्रतर्दन और वामदेव बैठे थे। सभी अपनी-अपनी बातों से अगस्त्य को वाकिफ कर रहे थे। मुनि एक अक्षर भी बोले बिना सुन रहे थे।

दस वर्ष में विश्वरथ खूब ऊँचा और खूबसूरत हो गया था। उसके मुख पर उभरती हुई जवानी का तेज फैल रहा था। उसकी आँखें धीर-गम्भीर थीं। जमदग्नि अपने पिता-समान दीर्घकाय बन गया था और उसके मुख पर निष्कपट स्वभाव की निर्मलता स्पष्ट दीख पड़ती थी। अथर्वण के शरीर में कुछ ज्यादा फर्क न हुआ था। अगस्त्य के कपोल पर झुर्रियाँ बढ़ गई थीं और सिर के कुछ बाल सफेद होने लगे थे। सब सुनने के बाद अगस्त्य धीरे-धीरे बोले—हरएक व्यक्ति अपनी-अपनी दृष्टि से ही निर्णय करने बैठे तो बात का कभी अन्त भी न आये। अथर्वण! तुम तो सारे सप्तसिन्धु को जानते हो।

'हाँ!'

'इस तरह कहीं गैरों की तरह अलग-अलग रहा जा सकता है? तुम्हारे यहाँ आकर बसने के बाद भरतकुल कितना बलवान् बना है?'—कोई नहीं बोला। 'त्रित्सु कितनी छोटी जाति थी; पर जब से इन्होंने उत्तर पुरुओं और शृंजयों के साथ मित्रता की, तब से इनका बल कितना बढ़ गया है? और पुरुओं ने यदु और अनुओं के साथ मित्रता की, तब से पुरुकुत्स राजा का प्रताप कितना बढ़ गया है?'

'अगर किसी के साहाय्य से कोई सबल हो जाय...'—घोषा ने कहा।

'यह तो होगा ही। नहीं तो छोटी जातियों का विनाश हो जाय। इतने वर्षों से लड़ रहे हैं, तो भी अब तक शम्बर को परास्त नहीं कर सके।'

'शंबर पर आपके बड़े दाँत गड़े हैं।'—हँसकर अथर्वण बोले।

मुनि की आँखों में भयंकर तेज झलक आया—'इसके संहार बिना आर्यों का उद्धार नहीं। नहीं तो किसी दिन यह सबको जड़मूल से उखाड़कर फेंक देगा।' उनकी आवाज में व्यग्रता दीख पड़ी; पर तुरन्त सँभलकर बोलना शुरू किया—आज विश्वरथ की जोड़ी का सप्तसिन्धु में दूसरा नहीं है; अगर इसको अब से यहीं रखूँगा, तो इसकी शक्ति तलवार की धार की तरह कट जायगी। प्रतापी पुरुषों के संघ में यह ऐसा बनेगा कि हम लोग चक्रवर्त्ती ययाति के पराक्रम अपनी आँखों देखेंगे।

'फिर क्या करना चाहिए?'—घोषा ने पूछा।

'जहाँ आर्यों का केन्द्र हो, वहाँ विश्वरथ को रखना, यह बात मुझे ठीक जँचती है।'

'पर भरत क्या किसी से कम हैं? हमारा वीर्य क्या कम है?'—प्रतर्दन ने कहा।

'दूसरों के साथ मेल-जोल करने से शक्ति बढ़ेगी।'

'पर जो कौशिक यहाँ न रहे, तो भरतों में वीरता को कौन प्रेरित करेगा?'

सेनापति ने पूछा—हमारे राजा को तो हमारे ग्राम में ही रहना चाहिए।

मुनि थोड़ी देर तक चुप रहे, फिर बोले—जहाँ राजा रहे, क्या वहाँ ग्राम न बने?

'कहाँ ।'—घोषा ने पूछा ।

'हे महिषी ! आज दो वर्ष हुए, राजा खेल ने मेरे आश्रम के निकट एक हर्म्य (महल) बनाया है । शृंजयों में श्रेष्ठ सोमक भी वैसा ही एक हर्म्य बनवाना चाहते हैं ।'

'पर इससे तो दिवोदास का बल बढ़ेगा । वह प्रतापी राजा होगा ।'

'नहीं, अतिथिग्व के साथ किस लिए सम्बन्ध है ? सिर्फ मेरे ही आश्रम में आज त्रित्सुओं, उत्तर पुरुओं और शृंजयों के प्रतापी वीर मिलते हैं, वहीं आर्य-मात्र की शक्ति और विद्या में वृद्धि होती है ।'

'पर मेरा विश्वरथ तो छोटा है । सबों के तेज में वह छिप जाय और हम आश्रित बनें !'—घोषा ने कहा ।

'भगवती !'—अगस्त्य ने कहा—'तुम अपने छोटे विश्वरथ को जानती नहीं । अपना हर्म्य वहाँ रक्खो और यहाँ भी रक्खो । वहाँ रक्खोगी तो मेरा काम भी सरल हो जायगा ।'

'भरतकुल की सर्वोपरिता तो चलती ही रहे ।'—प्रतर्दन ने कहा ।

'भरत जाति अकेली हो, तो सर्वोपरि हो, और सबके साथ बैठे, तो उसका कम दर्जा हो, ऐसा कहीं हो सकता है ? वहीं रहकर विश्वरथ किसी दिन आर्य राजाओं में श्रेष्ठ बनेगा ।'

अथर्वण ने, एकदम उसकी समझ में यह बात जैसे आ गई हो, अपने कपाल पर हाथ रक्खा और पीछे वह जोर से हँस पड़े—'मैत्रावरुण ! अब मैं समझा ।' कोई बोला नहीं । 'आप अपने आश्रम को समस्त सप्तसिन्धु का केन्द्र बनाना चाहते हैं ?'

अगस्त्य थोड़ी देर तक कुछ नहीं बोले । पीछे दाढ़ी पर हाथ फेरते

हुए धीरे से कहा—'जो देवों की इच्छा होगी तो यह भी होगा।' उनकी आँखें पलभर के लिए निश्चेतन-सी हो गईं।

'मैं आपका अभिप्राय समझता हूँ; पर यह बुद्धि किसने दी?'—प्रशंसा के भाव से अथर्वण बोले।

'सारी बुद्धि के प्रेरक, राजा वरुण की यही आज्ञा है।'—धीरे से मैत्रावरुण ने जोड़ दिया।

'विश्वरथ! तू क्या सोचता है?'—अथर्वण ने पूछा।

'मैं क्या सोचूँ? आप सब जो कहें वही।'

'पुत्रक! तू भी तो विचार कर। यह सब कुछ तेरे लिए ही तो है।'—अगस्त्य ने कहा।

इतने में एक दस्यु आकर हाथ जोड़ खड़ा हो गया। काला, ऊँचा, चपटी नाक का दास इन सब गौरवर्ण वालों में भय से भरे स्वप्न की तरह लगता था। वह हथियार लिये हुए था।

'क्या है?'—विश्वरथ ने स्नेह-भाव से पूछा। अगस्त्य कड़ाई के साथ देख रहे थे।

दास ने उनके कान में कुछ कहा।

'ठीक, मैं अभी आता हूँ।'

'यह कौन है?'—भ्रू भंगकर गुरु ने पूछा।

'यह तो वृक, हमारा पुराना दास है।'

'इस तरह आप छूट देकर दासों को सशस्त्र फिरने देते हैं, यह ठीक नहीं करते।'

विश्वरथ गुरु को अच्छी तरह जानता था। दासों को देखकर

उनका खून उबल पड़ता था। 'यह तो बहुत पुराना और विश्वासी दास है।'—विश्वरथ ने कहा।

'कोई दस्यु विश्वसनीय कभी देखा है ?'

'हमारे यहाँ ऐसे बहुत से हैं।'—घोषा ने कहा।

गुरु ने सूत्र पढा—दास दगा दिये बिना रहेगा नहीं।

विश्वरथ ने बात बदली—आज्ञा हो, तो मैं और जमदग्नि प्रतर्दन के साथ सभागृह में चले जायँ। वहाँ मघवन मुझसे मिलना चाहते हैं।

'अच्छा।'—घोषा ने कहा।

'उतावलेपन में कोई वचन न दे देना ?'—गुरु ने उसे चेतावनी दी।

(३)

राजा के हर्म्य के सामने भरतों के सभागृह में भरतकुल के मघवन—बड़े लोग—एकत्रित हुए थे। ये सब भी इन्हीं बातों की चर्चा कर रहे थे। सभागृह बहुत बड़ा और विशाल था। उसके चारों तरफ छप्परवाला बरामदा था, और बीच का भाग खुला था। उसके बीच में, एक बड़े कुण्ड में, आग जल रही थी।

यहीं पर आवश्यकता पड़ने पर मघवन मिलते थे, और साधारण तौर पर वहाँ ग्राम के मनमौजी लोग द्यूत खेलने या मदिरा पीने के लिए जमा होते थे।

अपनी दीप्ति से देखनेवाले को मुग्ध करता हुआ विश्वरथ उतावला-सा वहाँ आया ; पीछे जमदग्नि और प्रतर्दन आये। वह आया तो सभी खड़े हो गये। कुछ वृद्धजन उससे भेंटे। कुछ ने उसको आशीर्वाद दिये। कुछ उसके पैरों से लगे।

वृद्ध संवरण ने, जो ग्राम का मुखिया था, विश्वरथ का सत्कार किया। संवरण गाधि से बडा था, और भरतों के ग्राम का मुखियापन कुछ वर्षों से करता था। उसने विश्वरथ को बिठाया और थोड़ी देर तक सबने विश्वरथ के साथ आड़ी-टेढी बातें कीं। अन्त में सवरण ने बोलना शुरू किया। उसकी वाणी की धारा सिन्धु की तरह हमेशा बहा करती।

'भरतश्रेष्ठ! हम यह क्या सुन रहे हैं? हे जह्नुओं की कीर्ति के कलश! हमने ऐसा सुना है कि आप भरतों को छोड़कर विद्याभ्यास ही में लग जाना चाहते हैं। हे कौशिक! अब हमको इस तरह अनाथ छोड़कर भटकाना ठीक नहीं। हे भरत!'

'संवरण!'

'पर हे भरतश्रेष्ठ! हमारा इतना तो सुन लो। जो कुछ कहना है सक्षेप में ही कह दूँगा; पर हे कौशिक! जहाँ तक हमें याद है, हमारे पिता ने पितृलोकवासी परम पवित्र जह्नु...'

'पर सवरण!'—प्रतर्दन ने कहा। 'अभी हमें...'

'हम यही बात कर रहे हैं। हे भरतश्रेष्ठ! आपके जन्म से पहले एक समय हमारे गाधिराज ने मुझे बुलाकर...'

'सवरण!'—ज़रा हँसकर विश्वरथ ने कहा—मुझे समस्त भरतों ने बुलाया, इसका मैं कारण जानता हूँ। अब हमको क्या करना है? इसमे मेरी एक ही इच्छा है, भरतकुल की कीर्ति बढ़े, ऐसा ही मुझे करना है।

'बहुत ठीक कहा। हे भरतों में श्रेष्ठ! इन सब को...'

'पर भरतश्रेष्ठ को तो कहने दो'—एक जन बोला।

'मैं सबको...'—संवरण ने कहा।

'भरतो!'—प्रतर्दन ने घबड़ाकर भारी आवाज़ में कहा—मघवन्धु को अभी वापस जाना है; इसलिए सुन लो।

'मैं इन सबको......'—संवरण ने फिर कहना शुरू किया।

'संवरणजी! सुन लो, राजा क्या कहते हैं।'

विश्वरथ ने बोलना शुरू किया—भरतश्रेष्ठो!

'पर...'

'सुनो!'—प्रतर्दन ने ज़ोर से चिल्लाकर कहा—या तो कौशिक विद्याभ्यास छोड़कर यहीं आकर रहें, या राज्य किसी को सौंपकर विद्याभ्यास पूरा करें......यही बात है न?

'हाँ-हाँ-हाँ'—सब बोल उठे।

'पर हमारा मत'—संवरण ने कहना शुरू किया।

प्रतर्दन ने कण्ठ ऊँचाकर मानो संवरण बोलता ही नहीं है, इस तरह कहना शुरू किया—मैंने बहुतों के साथ बात की है। भरतों की तो अधिकांश में यही इच्छा है, कि कौशिक यहीं रहें। हम अपने राजा के बिना रह नहीं सकते।

'योग्य है, योग्य है।'—दो-चार लोगों ने कहा।

'भरतो!'—विश्वरथ ने कहा—आप लोगों की सम्मति के सिवा मैं कुछ करनेवाला नहीं हूँ; पर मैं अभी यहाँ आकर रहूँ, तो मेरा विद्याभ्यास अपूर्ण रह जाय।

'हे भरतश्रेष्ठ! आपका तो यहीं रहना योग्य है।'—दूसरे मघवन ने कहा।

'भरतश्रेष्ठ तो भरतों के बीच में ही शोभित हों।'—तीसरे ने कहा।

'भगवान् मैत्रावरुण की ऐसी इच्छा है कि जो मैं उनके आश्रम के पास हर्म्य बनाकर रहूँ, तो त्रित्सुओं और भरतों के बीच में...'

'क्या त्रित्सु...'

'उस दिवोदास के त्रित्सु-ग्राम में...'

'उँह—उँह...'

'कभी नहीं।'

'किसी काल में नहीं।'

इस तरह अगस्त्य की इच्छा सुनते ही कई लोगों ने विरोध किया।

'भरतश्रेष्ठ! आप देख सकते हैं कि त्रित्सुओं के लिए किसी को प्रीति नहीं है।'—प्रतर्दन ने कहा।

विश्वरथ ने ऊपर देखा। उसके मुख पर तेज फैल रहा था। एक ही दृष्टिपात से उसने सबको चुप कर दिया।

'भरतो! आप लोग अलग और फटे-फटे नहीं रह सकते। मैं रहने भी न दूँगा। समझे!'

'पर अभिमानी त्रित्सुओं के साथ अपनी नहीं पट सकती।'—एक ने साफ कह दिया।

'त्रित्सुओं के साथ रहोगे, तो तुम त्रित्सुओं के होगे या त्रित्सु तुम्हारे हो जायँगे? भरत क्या ऐसे निःसत्व हो गये हैं, कि किसी के साथ बैठते ही अधम हो जायँ?'—उसका प्रश्न इन्द्र के कोप-समान गर्जना कर रहा था। सब चुप हो गये।

'राजन्! हम घबड़ाते नहीं।'—अन्त में एक योद्धा ने कहा।

'घबड़ाते नहीं, तो चलो मेरे साथ त्रित्सु-ग्राम। जहाँ हम जायँगे, वहाँ मित्र और शत्रु रास्ता देंगे।'

'पर...' संवरण ने कहा—'हमको तो अपने पूर्वजों की रीति ग्रहण करनी चाहिए।'

'त्रित्सु भरतों के रक्षण में रहें या भरत त्रित्सुओं के?'—एक ने गुस्से में कहा।

विश्वरथ के ओठ बन्द हो गये। उसका अंग कँप रहा था, उसकी आँखें दूर आकाश पर ठहरी थीं।

'राजा वरुण! मेरे हृदय में जो कुछ हो रहा है, मैं उसे इन सबको किस तरह समझा सकता हूँ।'—टकटकी लगाकर उसकी ओर देखता रहा। मानो कोई देव उतरे हों, ऐसा चैतन्यमय वातावरण वहाँ उत्पन्न हो गया।

'भरतो! तुम्हारी पुरानी रीति से मुझसे नहीं चला जाता। सबसे दूर-ही-दूर रहकर अपने अभिमान का ही पोषण करना हो, तो यह मुझसे नहीं हो सकता। जहाँ दिवोदास-जैसे महावीर गर्जते हैं—जहाँ वशिष्ठ-जैसे सत्य की साधना करते हैं—जहाँ अगस्त्य-जैसे महर्षि वरुण को सोम पिलाते हैं, वहाँ—वहाँ मैं रहूँगा। इन सबके सान्निध्य में सबल होने के लिए समय आये—इन सब में अग्र स्थान प्राप्त करने के लिए। मैं तो वरुण के शासन-प्रमाण चलूँगा। उनकी कृपा से, जो किसी ने अब तक नहीं किया, वह मुझे करना है—नहीं, तो मरना है। भरतो! आपको यह अनुकूल न पड़े, तो मुझे छोड़ जाओ, अपना दूसरा राजा खोज लो!'

वह खड़ा हो गया। उग्र, ज्वलंत, अंग-अंग में कोपायमान। उसकी

दृष्टि आसमान पर ठहरी थी, वरुण के शासन को बाँचती। उसके माथे की मरोड़ में दुर्जेयता थी। वे सब स्तब्ध हो गये। एक तिरस्कारयुक्त दृष्टि से सबको परास्त कर, कोपायमान इन्द्र सोम को त्यागकर जैसे अदृष्ट हो जाते हैं। विश्वरथ सभागृह से उठकर चला गया।

जब अगस्त्य के पास से लौटकर विश्वरथ आया, तब 'क्या करना चाहिए' इसका उसने जरा भी निर्णय न किया था। पहले तो उसने लोगों को प्रसन्न रखने का संकल्प किया ; पर बातें करते समय उसने कुछ और ही अनुभव किया। उसकी नज़र के सामने से वह 'सभागृह' जाता रहा। उसकी आँखों ने अत्यन्त प्रकाशमय आकाश देखा। वहाँ उसने क्या देखा—सो साफ समझ में न आया। मानो आकाश हँस रहा हो! उसे मालूम हुआ—वरुणदेव उसे आज्ञा दे रहे थे। उसी की आवाज में देव जो कहने लगे, वही उसने कह डाला। उससे कहे बिना न रहा गया। वह चला जा रहा है ; इसका भी उसे भान न रहा। बड़े झपाटे के साथ चलता हुआ सरस्वती के तीर जब वह पहुँचा, तब उसे होश आया। क्या हुआ? क्या किया? क्या कहा? उसने बहुत याद किया और घबराता-घबराता अपने बोले हुए बोल, मानो दूसरे के हों, इस तरह फिर बोल गया। वह क्षुद्रता के भार के नीचे दबकर विनम्र हो गया। वरुणदेव ने उसी के मुख-द्वारा अपनी आज्ञा प्रकट की थी। अब दूसरा कोई रास्ता ही न था। कितनी बार उसने 'चल-चल' किया, इसका उसे खयाल न रहा ; परन्तु जब उसका मन शान्त हुआ और घर की तरफ लौटा, तब एक पेड़ के नीचे उसने जमदग्नि को खड़ा हुआ देखा। वह उसके पास चला गया। उसका भानजा बड़े आदर के साथ देख रहा था।

'अग्नि !'

कुछ सम्मानपूर्ण आवाज़ से जमदग्नि ने कहा—मामा ! तू तो महर्षि है ।

'न, मुझे कुछ स्मरण नहीं । कौन जाने, कैसे क्या बोल गया ?'

'खबर है ? मुझे ऐसा लगा कि देव स्वयं तुझ पर उतर आये हैं ?'

'मुझे ऐसा ही लगा । मेरा कुछ कहने का विचार तो न था ।'

'अब ?'

'अब क्या ? वरुण की आज्ञा बिना दूसरा कुछ हो सकता है ?'

सन्ध्या हो रही थी । गायें चरकर वापस आ गई थीं । लोगों की टोलियाँ राह में अपने घर के बाडे के पास खड़ी थीं । आज सब इसे देखकर हमेशा की तरह हाथ जोड़ रहे थे ; पर उसके सम्मान में लाड़-प्यार न था, अत्यन्त मान-मर्यादा थी ।

वह महल के समीप आ पहुँचा । प्रतर्दन अन्दर से आ गया था । अब तक यह अनुभवी सेनापति अपने हाथों में पलकर बड़े हुए विश्वरथ को प्रेम से बुला रहा था । इस वक्त उसने नीचे झुककर, पूज्य भाव से नमस्कार किया । विश्वरथ को आश्चर्य हुआ ।

वह अन्दर गया । एक परिचारक ने उससे कहा कि पत्नी-सदन में घोषा माता उसको बुला रही हैं । वह जाकर माता से मिला, तो उसके मुख पर अद्भुत भाव था । घोषा ने उसका माथा सूँघा—'पुत्र ! भरत-कुल को तारना' और उसकी आँखों में आँसू डबडबा आये । थोड़ी देर बाद वह बाहर पर्णकुटी में मैत्रावरुण का जहाँ डेरा था, गुरु से मिलने गया, अगस्त्य ने हँसकर उसका स्वागत किया—

'धन्य है, विश्वरथ ! तेरा निश्चय सुनकर मैं प्रसन्न हो गया।'

'गुरुदेव ! मैंने निश्चय नहीं किया। मैं बोला भी नहीं, मेरे मुँह से आप-से-आप निकल पड़ा, देव वरुण आकर बोल गये।'

अगस्त्य थोड़ी देर तक तीक्ष्णदृष्टि से देखते रहे, 'विश्वरथ !'—उन्होंने गंभीरता से पूछा—इसका मतलब क्या है ?

'भगवन् !'—नम्रता-पूर्वक उसने कहा—मेरी भी समझ में नहीं आता। मैं तो मानो वरुण देव का खिलौना हो गया था।

गुरु ने प्रेम से उसके सिर पर हाथ फेरा—वत्स ! आर्यों का उद्धार करना और मेरा अधूरा काम पूरा करना।

विश्वरथ कुछ न बोल सका, उसने विदा ली, आज के इस नये अनुभव से वह बेचैन-सा हो गया था, यह क्या हो गया ? सब उसके सामने पूज्य-भाव से क्यों देख रहे थे ?

(४)

त्रित्सुग्राम में राजा दिवोदास आज उत्सव मना रहे हैं। भरत-कुल शिरोमणि जह्नुओं में श्रेष्ठ विश्वरथ आज यहाँ आनेवाला है और भरत-वंश के त्रित्सु उसका सत्कार करने के लिए बाहर निकले हैं। लोग नये-नये वस्त्रों में, रंग उड़ाते, गाते और बजाते, तमाम गाँव में घूम रहे हैं। सायकाल के समय अतिथिग्व के भवन में आज सबको भोज में शामिल होना है।

अगस्त्य दिवोदास अतिथिग्व के पुरोहित न होने पर भी दोनों में, बिना कहे पूरी एकतानता है। दिवोदास ज़बरदस्त लड़ाका है ; और अगस्त्य की दृष्टि और बुद्धि में संपूर्ण विश्वास है। वह जानता है कि

जो बड़प्पन और कीर्ति उसको मिली है, इसका सच्चा मूल कारण मुनि हैं। मुनि के कारण ही उसकी सेना को प्रेरणा मिलती है ; इन्हीं के कारण सप्तसिन्धु में आज, त्रित्सुकग्राम सस्कार और विद्या का केन्द्र गिना जाता है। अगस्त्य को भी दिवोदास-जैसा सीधा, सरल और शूरवीर, अनुयायी मिलना अशक्य है। इसी के द्वारा उन्होंने आर्यों का एक महान् समूह इकट्ठा कर लिया है, और उन्हीं की कृपा से वह शम्बर-जैसे दस्युराज को हरा सकता है। अगस्त्य विश्वरथ और जमदग्नि के गुरु हैं, यह तो एक साधारण बात है ; पर अब मैत्रावरुण तो भरतों के पुरोहित हुए। त्रित्सु जिस जाति की शाखा हैं, वह भरत-कुल का बाल राजा विश्वरथ, दिवोदास के यहाँ आकर रहे ; और जिन जातियों का संगठन दोनों ने किया था, उसमें भरत-जैसी बड़ी और समृद्ध जाति मिले, इससे अधिक दोनों को आनन्ददायक और क्या होगा ?

शख बज रहे हैं और पताकाएँ फहरा रही हैं, लोग दौड़ते-दौड़ते दिवोदास के हर्म्य (महल) के सामने इकट्ठे हो रहे हैं। हर्म्य के बरामदे पर दिवोदास, अगस्त्य और सुदास प्रतीक्षा कर रहे हैं।

घोड़ों की टापों की आवाज सुनाई पड़ती है। हरएक की आँख सड़क पर लगी हुई है। घुड़सवार आते हैं, एक, दो, पाँच, दस ,सौ, दो सौ, तीन सौ। सब कवच पहने हुए हैं, सिर पर टोप लगे हुए हैं, सभी के कन्धों पर धनुष-बाण हैं, कमर में तलवार है। किसी-किसी के हाथ में भाला है, किसी के हाथ में पताका, मानो मरुत्-गण जग के जोश में चढ़े हों, ऐसे तेजस्वी हैं वे। विश्वरथ सबसे आगे आ रहा

है, अथर्वण के प्यारे अश्वराज 'मयूर' के पुत्र को फबे, ऐसी छटा से उसका पूरा ऊँचा दूध - जैसा सफेद श्यामकर्ण घोड़ा थिरक रहा है। विश्वरथ अपने कवच और टोप में युद्ध के लिए सन्नद्ध इन्द्र-सदृश शोभित सबको देखकर हँसता है।

महल के आते ही वह एकदम घोड़े पर से नीचे उतर पड़ता है और गुरुदेव के पास जाकर प्रणाम करता है। गुरु उसे उठाकर गले लगाते हैं। वह दिवोदास के पैर पड़ता है, और वह भी हर्ष-सहित उससे भेंटते हैं। सुदास को वह नमस्कार करता है, और सुदास उसका जवाब देता है। दोनों के बीच में अभी तक सद्भाव पैदा नहीं हुआ। आज जिसे देखकर दिवोदास हर्ष से फूले नहीं समाते, उसे देखकर सुदास द्वेष से विह्वल बन जाता है।

त्रित्सु हर्षित हो रहे हैं। इनका भी अभिमान तृप्त हो रहा है। अब तक जह्नुओं के तेज के सामने त्रित्सु निस्तेज थे; आज भरत-श्रेष्ठ त्रित्सुओं का सामन्त होने आया है। वृद्ध संवरण की बात जरा भी झूठी न थी।

'क्यों माता प्रसन्न हैं?'—अगस्त्य पूछते हैं।

'जी, हाँ।'

'प्रतर्दन बराबर देख-भाल करता है न?'

'जी हाँ, उससे क्या कहना पड़ता है? और अब तो अथर्वण भी वहीं पर रहनेवाले हैं।'

'तब विश्वरथ! तू यहीं उतर पड़।'—दिवोदास ने कहा।'

'अतिथिग्व! आज्ञा हो तो मैं अपने महल को जाकर पीछे आऊँ।

वहाँ जमदग्नि मेरी राह देख रहा होगा और घोडे भी थक गये हैं।'

'ठीक है, तो जाकर वापस आ जाना'—अगस्त्य कहते हैं। 'जैसी आज्ञा'—कहकर विश्वरथ घोडे पर चढता है। थिरकता हुआ घोड़ा भरतों के हर्म्य की ओर चला जाता है। लोग प्रशसा-मुग्ध आनन्द-ही-आनन्द में विश्वरथ की बातें करते हुए जाते हैं।

(५)

अगस्त्य के विशाल आश्रम में, मुनि की पर्णकुटी के पास ही बनी हुई छोटी पर्णकुटी में से एक बालिका बाहर आती और अन्दर जाती है। वह अधीर-सी हो रही है।

उसकी उम्र सत्रह साल की है। क़द मम्भोला और रंग गोरा है। लम्बे काले बालों की सुन्दर गूँथी हुई वेणी दोनों कन्धों पर झूम रही है। मोटे सूती लहँगे के ऊपर से एक ओढनी ओढ़े हुए है। उसके मुख पर माधुर्य है, शरद के शीतल शशि के सदृश।

उसकी आँखों में से जगत् को अपने स्नेह और विश्वास से आर्द्र करती हुई निर्मल तेज की धारा बहती है।

वह बाहर आती है, अन्दर जाती है, फिर बाहर आती है। कुटी के अन्दर चार-पाँच आर्य-स्त्रियाँ घर का काम-काज कर रही हैं; पर आज इस बालिका का चित्त ठिकाने नहीं है। उसका चित्त तो आश्रम और भरतों के नये बाँधे हुए हर्म्य के बाड़े के खुले हुए भाग पर बार-बार ठहर जाती है, एकदम वह द्वार पर खड़ी-खड़ी स्तब्ध हो जाती है। उसकी आँखें दौड़कर बाड़े के खुले हुए हिस्से पर जा पड़ती हैं। खुले मैदान में से एक युवक दौड़ता, हँसती हुई आँखों से उसे खोजता हुआ

घुस आता है। इसके तेजस्वी मुख पर निःसीम उत्साह झलक रहा है। वह चला आता है, बालिका को देखता है, और कूदता-उछलता आता है—

'रोहिणी!'

रोहिणी खुशी में चार कदम आगे आती है; किन्तु फिर पीछे ठिठक जाती है और लज्जित होकर खड़ी हो जाती है। उसकी निर्मल आँखें मूक होकर उसका स्वागत कर रही हैं।

पर्णकुटी के पास से दो कुत्ते दौड़ते हुए बाहर आते हैं और विश्वरथ तथा रोहिणी को झूमा-झटकी से दुलार-प्यार करते हैं। जिस कुतिया के बच्चों की गाड़ी बनाकर विश्वरथ और रोहिणी साथ-साथ खेले थे, उसकी सन्तान उन दोनों को देखकर, प्रेम से पागल हो जाते हैं।

दो वर्ष हुए, भगवती ने यमलोक का रास्ता पकड़ा था और अब रोहिणी अगस्त्य के आश्रम की अधिष्ठात्री है।

दोनों हँसते-हँसते चलते हैं। कुत्ते साथ में खेल करते हुए दौड़े आ रहे हैं।

'आखिर मैं आ ही पहुँचा। मुझे ऐसा लगा कि घोषा माता मुझे निकलने ही न देंगी।'

'मैं भी तेरी बाट जोहते-जोहते थक ही गई। कोई कहता, आज आयेगा; कोई कहता, कल आयेगा। और तू तो आता ही न था।'— रोहिणी कहती है।

'अरे! लेकिन अब मैं कौन हूँ? मैं क्या इस तरह आ सकता हूँ? वह भरतों का राजा राह में ही पड़ा होगा?'

'हम कब से इन विचारों के कारण मर रहे हैं।'—नीचा सिर कर रोहिणी देख रही है—अब तो तू यहाँ आयेगा या नहीं, इसका भी विश्वास नहीं है।

'तू अतिथिग्व के हर्म्य में क्यों नहीं आई ?'

'मुझे देखना था कि तू यहाँ कब आता है ?'— मुस्किराकर रोहिणी कहती है।

'ऐसा ? ऐसा जानता तो आता ही नहीं।'

'मैं देख लेती, कैसे नहीं आता था !'

दोनों हँसते हैं। उनके निर्मल नर्म हास्य को सुन आश्रम-वृक्षों के शुक-सारिका पक्षी अपनी कलोलें छोड़-छोड़कर उन्हें देखते ही मूक हो जाते हैं।

'मुझे तो ऐसा लगा कि कोई मुझको यहाँ आने ही न देगा।'

'कैसे ?'

'हमारे भरतों को घमण्ड बहुत है। त्रित्सुराज के यहाँ इनका राजा जाकर रहे, तो नाक कट जाय !'

'फिर ?'

'मुझसे भी 'न' नहीं कहा जायगा। एक बार मुझे सभा में बुलाया ; पर वहाँ रोहिणी ! मैं तो बेभान हो गया।'—विश्वरथ बोला।

'क्या कहता है ?'—कुत्ते पर धीरे-धीरे हाथ फेरती हुई रोहिणी बोली।

'हाँ, मेरा होश जाता रहा। मैंने अंतरिक्ष में राजा वरुण को देखा, उनका आदेश सुना। उन्होंने मुझे यहाँ आने की आज्ञा दी।'

'क्या कहता है ? विश्वरथ ! तू भी पिताजी की तरह देवों के साथ बात करना सीख गया ? इस तरह तो तू ऋषि हो जायगा ?'

'रोहिणी ! यह क्या मेरे हाथ की बात है ? बहुत बार मुझे देव की आवाज़ सुन पड़ती है। कभी-कभी उनके दर्शन भी होते हैं, कभी-कभी मुझे वह आज्ञा भी करते हैं।'

'सचमुच ! यह तो पिताजी की तरह तू बनने जा रहा है।'

'मुझे देव ने आज्ञा की, इसलिए मैं यहाँ आया।'

'देव भी कृपालु हैं। आज्ञा न की होती, तो हम भरतों से कब मिलने आनेवाले थे ?'

दोनों एक झाड़ के नीचे बैठ जाते हैं। उनकी गोद में बार-बार सिर रखते हुए कुत्ते भी वहीं खेलते हैं। तीन महीने की कथा कहते-कहते वक्त चला जा रहा है।

इतने में एक सीढ़ी पर से किसी की खड़ाऊँ की आवाज़ आई। दोनों चौंक पडे। वृक्षों और लताओं की आड़ में से वशिष्ठ उसी तरफ चले आते हुए दिखाई पड़े।

अगस्त्य से दस वर्ष उम्र में कम होने पर भी वशिष्ठ गभीरता में उन्हीं के-जैसे लगते हैं। उनसे यह कुछ दुर्बल हैं। इनका चिन्तनशील शांतमुख, और स्थिर सरल आँखें इनके व्यक्तित्व को सबसे निराला कर देती हैं।

ये राज्य-व्यवहार और युद्ध की अपेक्षा मंत्र-दर्शन तथा तपश्चर्या में ही अधिक संलग्न रहते हैं। आर्यों के समस्त जनपदों में यह तपोनिधियों में अग्रगण्य माने जाते हैं। किसी भी दिन यह असत्य बोले हों,

ऐसा किसी ने नहीं जाना ; किसी दिन अपने तप से विचलित हुए हों, ऐसा कोई मान नहीं सकता। स्वर्गीय महर्षियों के सिवा आर्य-संस्कार की ऐसी विशुद्धि किसी ने भी पालन की हो, यह किसी के जानने में नहीं आया। तप और विशुद्धि की जीवित मूर्त्ति वशिष्ठ अपने व्यक्तित्व के बल से राजाओं की सेनाएँ जो न करा सकती थीं, उसे कराते थे।

वह नीचे देखते हुए चले आ रहे हैं। विश्वरथ और रोहिणी खड़े होकर नमस्कार करते हैं। ऋषि नमस्कार लेते हैं और निश्चल नेत्रों से दोनों को देखते हैं।

'क्यों विश्वरथ! आ पहुँचा ?'—शब्दों में पूरी वजन-दारी है।

'जी हाँ, आपका तप बढ़ रहा है ?'

'हाँ वत्स!'—वशिष्ठ शांत-भाव से कहते हैं।

'रोहिणी, तू अब बड़ी हो गई।'—अपनी आवाज़ की तीव्रता की धारा से वे दोनों की स्वप्न-सृष्टि को एक ही धाक में छिन्न-भिन्न कर देते हैं। रोहिणी नीचे देखती है। विश्वरथ के हृदय में क्रोध उत्पन्न होता है। 'मैत्रावरुण ने तुझे वचन-दान-द्वारा सुदास को सौंप दिया है, यह तू जानती है। एकान्त में पुरुष का संग तुझे तो त्याज्य होना चाहिए।

विश्वरथ के अभिमान और मनोरथ के टुकड़े हो जाते हैं। भीतर से उसका जी भड़क उठता है और वशिष्ठ को अपमान-भरा प्रत्युत्तर देने की प्रवृत्ति उसमें जाग्रत हो उठती है ; पर शब्द सत्य हैं। रथ के चक्र के नीचे वृक्ष कुचल जाय, इस तरह इस सत्य के नीचे इसके क्रोध की वृत्ति कुचल जाती है।

'मैं परपुरुष नहीं हूँ। मैं इसका बाल-मित्र भाई हूँ।'—क्रोध दबाकर विश्वरथ ने कहा।

'मैं जानता हूँ।'—शान्त और स्वस्थ भाव से तपस्वी जवाब देता है—पर मनोवृत्ति किस समय दूषित हो जाय, इसे तो देव भी नहीं बतला सकते हैं।

यह अन्तिम वाक्य भी सत्य और भयंकर निकला। दोनों को उसी तरह छोड़कर, मानो कुछ हुआ ही न हो, इस तरह तपस्वी वशिष्ठ नीचा सिर कर धीरे-धीरे अपने रास्ते चले जाते हैं। रोहिणी दोनों हाथ मुँह पर रखकर रो पड़ती है। विश्वरथ उग्र और घबराया हुआ वहाँ से शीघ्र चला जाता है।

(६)

विश्वरथ का अभिमान चूर हो गया। जब त्रित्सुग्राम में विजेता के समान आकर अपनी महत्ता की प्रशंसा बाल-मित्रों के आगे करता था, विजय के उन धन्य क्षणों-द्वारा वशिष्ठ ने उसको अधमों में अधम अनुभव करा दिया।

इसके क्रोध का पार न था, वशिष्ठ ने इसको दस्यु की तरह अधम गिना था। इसकी उद्विग्नता का पार न था; वशिष्ठ ने जो कहा था, वह बिलकुल ठीक था। उसे लगा कि वशिष्ठ के सामने वह एक जरा-सा छोकरा है। किस लिए? किस लिए वशिष्ठ के दो वाक्यों ने इसके गर्व और हर्ष को खण्डित कर दिया?

रोहिणी सुदास की पत्नी बननेवाली है; इसलिए वह इसकी सहेली नहीं रह सकती, यह बात सच थी। फिर वशिष्ठ ने क्या बुरा कहा?

इतने वर्ष हो गये, रोहिणी को वह अपनी बहन मानता था। सत्यवती से मिलने जाते समय जो हर्ष न होता था, उससे अलग होने पर जो उद्वेग न होता था, उतने हर्ष और उद्वेग रोहिणी के सयोग और वियोग से उसे होते थे। वशिष्ठ की बात बिलकुल खरी थी, इसकी मनोवृत्ति शुद्ध न थी। इसकी आँखों में आँसू भर आये। वशिष्ठ ने सच ही कहा था, कि यह असत्य का आचरण कर रहा है। वशिष्ठ की सत्य-दृष्टि इसके प्रताप का मूल थी। जब तक इसकी सत्य-दृष्टि ऐसी न हो, तब तक हमेशा वशिष्ठ इसको ऐसे जहर के घूँट पिलाते ही रहेंगे; पर रोहिणी! रोहिणी फिर न मिलेगी? मिलेगी; पर अकेली नहीं। मिलेगी; पर सखी भाव से नहीं। मिलेगी; पर सुदास की भावी-पत्नी के रूप में। वह सुदास की वचनदत्ता न होती, तो वह उसे आप भरतों की महिषी बनाता; पर अब क्या? और अगस्त्य के वचन से कैसे चले? वशिष्ठ का कहना बिलकुल सच था। वशिष्ठ ने तो आज सत्य दिखाया; पर पक्षियों का पथ देखनेवाले, हृदय का रहस्य समझनेवाले वरुण ने तो इसका अन्तर कब का देखा होगा! आत्म-तिरस्कार के मारे उसने आक्रन्दन शुरू किया। यह वरुण देख लें, तो फिर इसे सबसे बड़ा कैसे बनायेंगे? वशिष्ठ और अगस्त्य, दिवोदास और कुशिक—इन सबसे बढ़कर यशस्वी होने की शक्ति इसको देव कैसे देंगे? इस तरह सोचते-सोचते वह लौटा। अंत में उसने रोहिणी के साथ एकांत में न बैठने का संकल्प किया और वशिष्ठ की सर्वोपरिता तोड़ने को जितनी सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए देवों की याचना करता, वह म्लान-मुख और दीन-हृदय लेकर अपने हर्म्य को लौट आया।

◎

चौथा परिच्छेद

शंबर के पुर में

सूर्योदय होने की तैयारी थी। सरस्वती के तीर से सलिल-कण-युक्त शीतल पवन बह रहा था। मुनि मैत्रावरुण अपने आश्रम में पर्णकुटी के सामने पेड़ के पास बैठे थे, मानो पेड़ों पर होनेवाले पक्षियों के मनोहर कलरव में वे अपने प्रश्नों का निराकरण खोज रहे हों।

आज पाँच वर्ष हुए, रोहिणी बिलकुल बदल गई थी, उसका हास्य जाता रहा था और शरीर कृश हो गया था। पिता की भक्ति के लिए ही वह जीवित थी। अनेक बार मुनि ने कारण पूछा था; पर खिन्नता की सार-जैसी हँसी हँसकर उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया था। आश्रम में रहते समय मुनि का समय प्रजाओं के भाग्य-निर्माण में, उनको अपने साथ रखने में, आश्रम की प्रतिष्ठा कायम रखने में और असुर शंबर के

साथ लड़ाई की तैयारी करने में बीतता था। वर्ष में छः महीने तक उनको युद्ध में जाना पड़ता था, या आर्यों के मुख्य स्थानों में प्रसग-प्रसग पर उपस्थित होना पड़ता था, इसी कारण अपनी पुत्री की तरफ़ ध्यान देने का समय उनको मिलता नहीं था।

दो वर्ष पहले सुदास के साथ इसका विवाह कर देने की बात हुई थी। उस समय रोहिणी ने व्रत के बहाने उसे मुलतबी करवाया था। यह तो स्पष्ट था कि अपना खिलाड़ीपन छोड़कर ऋषियों के कर्मानुष्ठान में वह प्रवृत्त होने लगी थी। उसके बाद एक वर्ष तक दिवोदास और अगस्त्य शंबर के साथ घोर सग्राम में फँस गये थे; इसलिए विवाह का प्रसंग उपस्थित नहीं हुआ। फिर से विवाह की चर्चा निकली; पर इतने में सुदास बीमार पड़ गया और फिर यह बात ज्यों-की-त्यों रह गई। कुछ ही समय में दिवोदास ने पक्थों के साथ युद्ध छेडा; इ र लिए विवाह स्थगित रहा।

अगस्त्य को दिनों-दिन रोहिणी के स्वभाव में परिवर्तन मालूम पड़ने लगा। राजवैभव की उसकी इच्छा कम होती गई। दिवोदास के महलों की तरफ खास कारण बिना जाना भी उसने छोड़ दिया और तप करने में लीन हो गई। उसने सूती और ऊनी वस्त्र छोड़ दिये, वल्कल पहनने लगी। प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में वह यज्ञ करती। मन्त्रों का उच्चारण भी अब उसे सरल हो गया था।

एक दिन अगस्त्य को भान हुआ कि रोहिणी अतिथिग्व की बहू होने के बदले तपस्विनी बनती जा रही है। पिता ने पुत्री के साथ बात करने का मौक़ा खोजा। उसने स्पष्ट जवाब नहीं दिया। पिता ने विवाह

की तैयारी करने की आज्ञा दी। पुत्री जवाब देने के बदले रो दी।

अगस्त्य को होश आया। सारे सप्त-सिन्धु की चिंता में इन्होंने पुत्री की चिंता तक न की। वे रोहिणी को बाल्यकाल से सुदास को अर्पण कर चुके थे। अब यह लड़की जान-बूझकर राज-महिषी बनने की योग्यता को खो रही थी। स्त्री-स्वभाव का उन्हें परिचय नहीं था।

इसका क्या कारण?

रोहिणी सरस्वती में स्नान कर आई, प्रातः-सन्ध्या पूरी की और पिताजी के लिए दूध लाई। वह रूपवती थी; पर निस्तेज हो गई थी और उसकी आँखों में दीनता आ गई थी।

'रोहिणी! इतने सवेरे किस लिए उठती है? तेरी तबीयत ठीक नहीं है?'

वह म्लान हँसी हँसी—पिताजी! तबीयत अच्छी है। ब्राह्म-मुहूर्त के सिवा उषा का आवाहन कैसे हो?

'तू यह क्या करने लगी है? इस तरह तो तू दिवोदास की बहू होने के पहले ही बूढ़ी हो जायगी।'

'पिताजी! सनातन यौवन तो उषा के सिवा और किसी को नहीं मिला है।'—लड़की ने जरा गंभीरता से कहा।

'मैंने सुना है, कि लोपामुद्रा को यह नित्य यौवन प्राप्त है।'—अगस्त्य ने हँसाने का प्रयत्न किया।

'पिताजी! सब लोग कहते हैं कि ये भरद्वाजजी तो महर्षि हैं।'

'उनकी बात जाने दे। स्त्री ने आर्य नाम को जितना कलंकित

किया है, उतना किसी ने नहीं किया।'—तिरस्कार-पूर्वक अगस्त्य ने कहा और दूध पीने लगे।

'पिताजी!'—रोहिणी ने धीरे से कहा—कल मुझसे अविनय हो गया था, उसे क्षमा कीजिए।

'अविनय! क्या पागल हो गई है?......अरे! पर यह जमदग्नि क्यों दौडे आ रहे हैं? इनको हो क्या गया है?'

गौरवशाली और मितभाषी जमदग्नि पागल की तरह दौड़ते हुए आये—भगवन्! विश्वरथ और ऋक्ष का हरण हो गया!

'और्व क्या कहता है, कौन हरण कर ले गया?'—अगस्त्य खडे हो गये। रोहिणी पागल की तरह देखती रही।

'शम्बर!'

'शम्बर!'—खीझे हुए सिंह की तरह अगस्त्य ने गरजना की।

एक चीख सुनाई पड़ी; अगस्त्य ने घूमकर देखा— रोहिणी बेहोश होकर भूमि पर पड़ी थी।

(२)

यह घटना रात को हुई। पचीस वर्ष की उम्र में ऋक्ष अत्यन्त स्थूल बन गया था, और उसकी बुद्धि भी उसके शरीर ही की तरह हमेशा यही गुण बतलाती थी। वह अब अगस्त्य के आश्रम में ही था। रात में गरमी थी; इसलिए अपनी देह की विशालता पर हमेशा बहनेवाले पसीने को सुखाने के लिए, वह नदी के किनारे फिरने लगा। वह थोड़ी दूर गया होगा कि पानी में खड़े होकर देव को अर्घ्य देते हुए विश्वरथ को देखा।

ऋक्ष कुछ वर्षों से विश्वरथ का अत्यंत भक्त बन गया था। उसके पास बैठने, उसी के गुण गाने और उसके काम करने में ही इसका समय बीतता था! अगर विश्वरथ न हो, तो तृत्सुग्राम के सभा-गृह में घी या सुरा के सेवन करने में यह कभी चूकता नहीं था।

विश्वरथ को देख यह पानी से थोड़ी दूर पर खड़ा हो गया, और प्रार्थना करने के ढंग से कहना शुरू किया—हे भरत-श्रेष्ठ!

विश्वरथ इसकी तरफ घूमा। उसी क्षण जल में से पाँच बलिष्ठ, भयानक और जबर्दस्त दस्यु उछलकर बाहर आये। दो दस्युओं ने विश्वरथ को उसके मुँह मे हाथ डालकर पकड़ा और दूसरे दो, दस्युओं ने ऋक्ष को इसी तरह पकड़ लिया। दोनों में से एक के भी मुँह से आवाज़ तक नहीं निकली। दस्युओं ने दोनों को पानी में खींचा और उन्हें अपने हाथों पर धरकर नदी को पार कर गये।

एक बूढ़ा मछुआ अकेला बैठे-बैठे मछली पकड़ रहा था। उसने पाँच दस्युओं को दो आर्यों को पकड़े पानो के बाहर घसीटते देखा। मारे डर के वह कुछ न बोल़ सका। उन लोगों ने जहाँ कुछ दूर पर अपने घोड़े खड़े कर रखे थे, वहाँ दोनों क़ैदियों को वे ले गये। उन्होंने उन कैदियों को घोड़ों पर बिठाकर बाँधा और खुद अपने घोड़ों पर बैठकर सरपट भागे।

मछुआ बहुत देर तक तो घबराहट में ही बैठा रहा। इसका मछली पकड़ने का मन भी न हुआ। जब सवेरा होने को आया, तब यह अपनी छोटी-सी नाव खोलकर उसमें बैठा और नदी के उस पार पहुँचा और वहाँ गया, जहाँ वह हमेशा भरत की कुटी में मछली

बेचा करता था। वहाँ तो उस समय विश्वरथ की खोज हो रही थी।
उसने उन लोगों से जाकर सारा हाल कहा। लोग इसे जमदग्नि के
पास ले गये। उन्होंने लोगों को तलाश करने भेजा; क्योंकि उन्हें
धीवर की बात पर विश्वास न हुआ। खोज करने को गये हुए लोगों ने
वापस आकर कहा कि—पैरों के निशानों की बात सच्ची थी और घोड़ों
के पैरों के निशान शम्बर के एक गढ़ पर जानेवाले मार्ग में दिखाई
पड़ते थे। रास्ते में विश्वरथ के हाथ का सुवर्ण कंकण और ऋक्ष की
रुद्राक्ष-माला की मणियाँ भी मिलीं। दोनों ने जाते-जाते अपनी निशानी
के लिए इन्हें डाला था।

शम्बर ने अच्छा मौका पाया था। दिवोदास बहुत दूर पक्थों के
साथ छिड़े हुए छोटे से युद्ध में फँसा था। सृंजयों का राजा सोमक
बीमार पड़ा था; पर अगस्त्य रास्ता देखते रहें, ऐसे न थे। उन्होंने दूतों
को बुलाकर आज्ञाओं का ताँता-सा लगा दिया—जमदग्नि, जो युद्ध
के लिए लायक न थे, भरत-ग्राम जाकर सँभालें; सेनापति प्रतर्दन
जितनी भी हो सके, उतनी सेना लेकर निश्चित स्थान पर चला जाय।
राजा खेल सैन्य लेकर तुरन्त आ जाय। अथर्वण अपने अश्व-सैन्य को
लेकर वहाँ पर आ मिलने की कृपा करें। राजा सोमक जितनी भी हो
सके, उतनी सेना भेज दे, राजा दिवोदास पक्थों का कुछ समाधान
करके चले आवें।

अगस्त्य एक पीपल के पेड़ के नीचे रात में सोनेवाले कंद-मूल
खाकर जीनेवाले मुनि, जिनकी जायदाद में सिर्फ एक मृगचर्म, एक दण्ड
और एक कमंडल थे—एक दिन में आधी आर्य-जाति को आज्ञाएँ भेज

रहे थे। शम्बर का विनाश होना चाहिए। दस दिनों के अन्दर सबके जवाब मिल गये। दिवोदास ऐसे न थे कि कुछ ही महीनों में आ सकें। प्रतर्दन आप आया। इस बहुत बूढ़े सिपहसालार को क्रोध आ गया। उसके मन में विचार उठा—'शम्बर हमेशा भरतों के साथ अच्छा ही बर्ताव रखता था, और इतने वर्षों बाद भरतों के राजा को उठा ले गया।' उसने कुल भरतों की तमाम फौज तैयार की; पर अथर्वण को यह पसन्द नहीं आया। उसने आना स्वीकार नहीं किया। कहला भेजा कि शम्बर की भूल हुई होगी, नहीं तो वह भरतश्रेष्ठ को न उठा ले जाता। इसने शम्बर को सदेशा भेजा है और वह अब विश्वरथ को छोड़ देगा; और ज़रूरत पड़े, तो शम्बर को कुछ देना भी चाहिए। यह सुनकर अगस्त्य का क्रोध और भड़का। शम्बर के साथ सन्धि और उससे लिए हुए किले को वापस देना! यह कभी नहीं होगा, शम्बर के साथ लड़ना ही चाहिए।

(३)

विश्वरथ को ज्यों ही घोड़े पर कसकर बिठाया, त्यों ही उसने अपना कंकण उतारा और ऋक्ष से भी अपनी माला की मणियाँ काट फेंकने को कहा, और वह बिना कुछ मुँह से बोले बैठा रहा।

सूर्योदय होने तक ये सवार घोड़े दौड़ाते जन-पदों (लोगों की आबादी) का रास्ता छोड़कर जगल की तरफ आगे बढ़े। जब उजाला हुआ, तब विश्वरथ सबको देखने लगा। छः मजबूत और हथियार बन्द दस्यु इसके साथ थे। विश्वरथ को वृक ने पाला था; इसलिए उनकी बोली थोड़ी-थोड़ी उसकी समझ में आती थी।

'कहाँ ले जाते हो ? यह तो कहो।'—विश्वरथ ने हँसकर सरदार से पूछा। सरदार छोटा, बहुत मक्कार और बदसूरत लगता था। यह कुछ गभीर-सा मालूम होता था। उसकी आँखों में बल पड़ गये और 'क्या-क्या' कहकर उसे चुप रहने का इशारा किया। जवाब में विश्वरथ बड़ी मीठी रीति से हँसा—सरदारजी! 'क्या-क्या' से क्या मतलब है ? मेरे हथियार छुडा लिये हैं, हाथ-पैर बाँध दिये हैं। ज़बान बोलकर मैं भाग कैसे जाऊँगा ?

सरदार उसके सामने चुपचाप घूरता रहा—'सरदार!'—विश्वरथ बोला—'इस तरह घोडे दौड़ायेंगे, तो कुछ ही समय में खिसल जायँगे। मेरा वृक कहता था कि शम्बर जैसे घोडे रखते हैं, हम वैसे नहीं रखते, और आपका यह व्यवहार!

'व्यवहार!'

सरदार ने जवाब नहीं दिया; पर घोड़ों की हालत देखकर वहीं उतरने का हुक्म दिया। वे सब जगल में आ पहुँचे थे। पैरों के निशान नाम-मात्र ही के थे। थोडी दूर पर एक नाला बहता था। एक बडे वृक्ष की छाया में असुर उतरे, विश्वरथ और ऋत्त को उतारा और दो आदमियों के साथ पानी पीने के लिए घोड़ों को भिजवाया।

विश्वरथ एक सुन्दर हरी-भरी जगह में जाकर लेट गया। ऋत्त की घबराहट और दुःख का पार न था, ऐसा उसके मुँह से स्पष्ट मालूम हो रहा था।

'ऋत्त! ऐसी रोनी सूरत क्यों बना ली ? ज़रा हँस तो सही। कितना सुन्दर वन है! और कितने अच्छे मित्र हैं!'

सरदार आँखें फाड़कर देख रहा था। विश्वरथ ने उससे कहा—दोस्त! आँखें किसलिए फाड़ते हो? न तो तुम्हीं बोलते हो और न मुझे बोलने देते हो? दूसरा और कुछ नहीं, तो अपने राजा शम्बर की ही बातें करो। कहते हैं कि यह रोज दो भैंसे, दो स्त्रियाँ और चार लड़के खा जाता है। यह बात ठीक है? विश्वरथ ने यह इस ढंग से कहा कि सरदार हँस पड़ा।

'तुम्हारे हँसने पर यह बात सच मालूम होती है। वह मुझे सवेरे खायेगा या शाम को?'

सरदार और भी ज्यादा हँसने लगा।

उसने ऋक्ष की तरफ उँगली उठा करके पूछा—मेरे इस मित्र को पहचानते हो? सरदार ने सिर हिलाया।

'इसे जौ और दूध के साथ पकाकर खाने से शम्बर युवा हो जायगा, ऐसा मेरी ओर से उससे कहना।'

आखिर सरदार से नहीं रहा गया। 'तुम लोगों का क्या यही खयाल है कि हम नर-भक्षी हैं?'—उसने यह हँसकर पूछा।

'यह क्या बकता है?'—ऋक्ष ने पूछा।

'यह ऐसा कहता है, कि इनका शम्बर सवेरे उठकर एक-एक आर्य को जौ और दूध के साथ पकाकर खाता है।'

'हे देव!'—ऋक्ष का कलेजा धड़क गया। उसने अपनी घोड़े-जैसी लम्बी नाक से दीर्घ निःश्वास छोड़ा।

सरदार ने विश्वरथ से पूछा—तुम अगस्त्य के शिष्य हो?

'हाँ।'

सरदार ने पूछा—यह रोज असुरों का रक्त पीते हैं? यह सच्ची बात है?

अब विश्वरथ हँस पड़ा। शम्बर के बारे में जैसे आर्यों में विचित्र कथाएँ फैली हुई थीं, वैसे ही असुरों में अगस्त्य के बारे में फैली थीं। इतने में एक सैनिक कुछ पक्षियों को मार के लाया और सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी करके आग जलाई और उन्हें सेंकने लगा।

सरदार ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है?

विश्वरथ ने अपना कम प्रख्यात कुल-नाम बताया—'जह्नु।'

'उसका क्या नाम है?'

विश्वरथ ने कहा—कुशाग्र।

'अगस्त्य का तुमसे क्या रिश्ता लगता है?'

'रिश्ता? हम तो उनके शिष्य हैं; पर भाई! हम कब पहुँचेंगे?'

'क्या काम है?'

'मैं अपने प्रिय बन्धु शम्बर से भेंट करने के लिए तरस रहा हूँ!'—विश्वरथ ने हँसकर कहा।

सरदार ने कहा—प्रिय बन्धु!

'तेरे सिवा हमें ऐसे कौन ले जाय?'

सरदार समझ गया और हँस पड़ा। उसको यह लड़का बहुत पसन्द आया। 'तुझे ऐसा बोलना कहाँ से आया?'

'एक असुर ने मुझे पाला-पोसा।'

सरदार ने कहा—इसीलिए तो! तुम हमारे-जैसे हो।

'मुनिवर! मैं धन्य हो गया। आपके शिष्य की प्रशंसा सुन

लीजिए।'—यह कहकर विश्वरथ खूब हँसा।

'यह क्या कहता है?'—ऋत्त ने घबराकर पूछा।

'यह चपटी नाकवाला कहता है कि शम्बर हमें फौरन् खाय या कुछ दिन नमक में रखे, तो और अच्छा।'—यह कहकर विश्वरथ हँसा।

'ऋत्त नाराज़ हुआ। कौन जाने तुम्हें हँसना कैसे आता है?'

'दोस्त! मरना ही है, तो फिर क्यों न हँस लूँ?'

(४)

जब शाम होने आई, तब घुड़सवार जगल पार करके एक पहाड़ी के पास आ पहुँचे। पहाड़ी के ऊपर पत्थर का एक बड़ा किला दीखता था। रास्ते में विश्वरथ ने सरदार के साथ बातें करके उससे मित्रता पैदा कर ली थी। सरदार का नाम था तुग्र। शम्बर बूढ़ा था। इसके चार स्त्रियाँ, सोलह लड़के और नौ लड़कियाँ थीं। इसके पास पत्थरों के सौ गढ थे। उनमें से मुख्य गढ़ यह था। ये सब बातें उसने सरदार से मालूम कर लीं।

राह में असुरों के गाँव भी मिलते थे। छोटी छोटी सूखे पत्तों की झोंपड़ियों में अर्द्धनग्न स्त्री-पुरुष रहते थे। ज़्यादातर काले रंग के थे और कोई-कोई ज़रा ताम्रवर्ण थे। बहुत बदसूरत और चपटी नाक के थे। घुड़सवारों को आते देख वे सब इकट्ठे होते और भयकर हर्ष-नाद के साथ तुग्र को घेर लेते। सब जमीन पर गिर-गिरकर सम्मान प्रदर्शित करते और खाने के लिए मांस और पीने के लिए पानी देते। तुग्र अपनी स्वाभाविक गंभीरता छोड़कर हँसता, और किसी को थप्पड़ मारकर और किसी की पीठ ठोंककर अपना प्रेम दिखाता।

जिस पहाड़ी पर शम्बर का पुर था, उसके नीचे एक बडा गाँव था। वहाँ इनके पहुँचने से पहले, क़रीब पचास के हट्टे-कट्टे सिपाही ऊँचे-चौड़े भाले और चमड़े की ढाल लेकर इनके सामने आये। वे सब एक लँगोटी पहने थे, जुदी-जुदी ज़ात की कौड़ियों की मालाएँ कमर में बाँधे थे, और सिर पर मोर-पख खोंसे हुए थे। विश्वरथ और ऋक्ष को क़ैदी की हालत में देख शोर मच गया और सब लोग घुड़सवारों के आस-पास नाचने लगे। तुरन्त गाँव में से स्त्री-पुरुष और लड़के निकल आये और उसी तरह नाचने लगे।

ऋक्ष के तिरस्कार की सीमा नहीं थी। वह नाक सिकोड़कर देखने लगा और मन्त्र रटने लगा, जिससे इन नर-पशुओं के हाथ से छुटकारा मिल सके। विश्वरथ दो-चार बार असुरों के साथ युद्ध में लडा था; पर इसकी जिन्दगी में यही पहला असुर-परिचय का मौका था; इसलिए यह बड़ी दिलचस्पी के साथ यह सब देखता रहा। एक बार तो जब सब गोलाकार बनाकर नाचते-नाचते बहुत शोर मचा के जमीन पर सो गये, तब तो प्रशंसा-मुग्ध होकर, इसने उनको धन्यवाद भी दिया और इसमें उसको दिलचस्पी लेते देख, तुग्र भी उस पर खुश हो गया।

आखिर जब नाचते-नाचते सब थक गये, तब रास्ता दिया, और तुग्र और उसके साथी गाँव में से होकर पहाडी पर चढने लगे। गाँव में छोटी-छोटी चटाई की झोंपड़ियों की भरमार थी, और काले, मैले-कुचैले लड़के रास्ते में घूमते-फिरते थे; पर सबकी ओर से तुग्र का सद्भाव देखकर इसका हृदय पिघल गया। खुद प्रतापी भरत-श्रेष्ठ, गर्विष्ठ आर्योत्तम, अगस्त्य का शिष्य और देवों को मन्त्र से मुग्ध करनेवाला

होने पर भी, दुष्ट माने जानेवाले इन असुरों के प्रति इसको तिरस्कार का भाव उत्पन्न नहीं हुआ। उसे भी अपने मन की यह दशा देखकर, स्वयं अचम्भा हो रहा था।

इनके घोडे, जो रास्ते से परिचित थे, झटपट पहाड़ी पर चढ़ गये। मार्ग में जितने सिपाही मिलते, सभी तुग्र का सम्मान करते। अन्त में ये गढ़ की बड़े पत्थरों की दीवार के पास आये और विश्वरथ ने चारों ओर नज़र दौड़ाई। चारों तरफ जंगल दीखता था। कहीं कहीं असुरों के गाँवों में से धुआँ निकलता हुआ देख पड़ा, कभी-कभी नीचे से असुर समूहों का शोर-गुल संध्या की शांति को भग करता। इस रमणीय-स्थल का सौंदर्य देखकर उसको अपार आनन्द हुआ। कितना विशाल है यह जन-पद और कितने भावुक प्रकृति के हैं ये लोग!

तुरन्त उसको अपनी दशा याद आई। तृत्सु-ग्राम से कितने कोसों दूर, घोर जंगल के बीच, ऐसे भयंकर योद्धाओं से संवृत्त और सुरक्षित स्थल में इसको शम्बर कैद रखे, मार डाले, या खा जाय, क्या पता? इस बार कोई चारा नहीं था। खुद अगस्त्य को खबर नहीं थी कि शम्बर का घर कितना दुर्जय था। बीस-बीस वर्ष की लडाई से भी जो थका नहीं, ऐसे भयंकर असुर को अगस्त्य कैसे हैरान करे? उन्होंने वरुणदेव का स्मरण किया। उन्होंने अपना सिर झुकाया और आकाश की ओर चारों तरफ भक्ति-भरी नजर डाली। राजा वरुण से आखिरी विदा ली और वह, तुग्र और दूसरों के साथ, शम्बर के गढ़ में घुसा।

गढ़ बहुत विशाल था। यहाँ भी सैकड़ों छोटी चटाइयों की त्रिकोणाकार मुखवाली झोपड़ियाँ थीं। बहुतेरी झोपड़ियों के आगे,

वहाँ रहनेवाली स्त्रियाँ लड़के लेकर बैठी थीं। आग पर कुछ खाने के लिए पक रहा था और अनेक प्रकार के मांस की गन्ध आती थी। गढ़ के बीच में एक दूसरा पत्थर रखकर एक महल बना था। उस तरफ घोड़ों पर से उतारकर तुग्र इन दोनों कैदियों को ले गया। दोनों की बेड़ियाँ खोल दी गईं; पर हथकड़ी ज्यों-की-त्यों रही।

महल के पास आने पर कई रक्षक मिले। इन्होंने भी शोर मचाकर इनका स्वागत-सत्कार किया। महल की पत्थर की चहारदीवारी के अन्दर भी छोटी-छोटी पत्थर की झोपड़ियाँ थीं। चार ऊँचे पत्थर खडे करके, दीवार और छत की जगह चटाई बँधी हुई थी।

महल के पीछे से शख की आवाज़ आई। इतने में तुग्र उन्हें झोंपड़ियों से होकर दूसरी तरफ ले गया। पीछे पत्थरो के टुकडों से बनाई हुई एक गोलाकार खुली हुई ज़मीन थी। बीच में सौ-सवा-सौ स्त्री-पुरुष ज़मीन पर प्रणाम करते हुए पड़े थे। इन्हें सिपाहियों को सौंपकर तुग्र इस पत्थर के पाल में गया और सबकी तरह साष्टांग नमस्कार किया।

विश्वरथ ने देखा। इस गोलाकार स्थान के बीच में एक मनुष्य-प्रमाण बड़े काले पत्थर का लिंग खडा किया हुआ था और उस पर सफेद लकीरें खींची हुई थीं। सामने एक ऐसे ही पत्थर का बैल बिठाया हुआ था। बीच में आग जल रही थी। सामने ज़मीन पर मास का नैवेद्य रखा हुआ था और उसके नज़दीक ही एक डरावना आदमी खड़ा था। इस आदमी के लबे बाल उसकी कमर तक लटकते थे। इसने खोपड़ियों का हार पहना था और सारे शरीर को लाल रंग से

चुपड़ रक्खा था। उसके एक हाथ में त्रिशूल था और दूसरे हाथ से वह शखनाद करता था। इसके गले में जीता हुआ साँप लिपटा हो, ऐसा मालूम होता था। विश्वरथ घबरा गया, मानो यह एक भयंकर स्वप्न हो।

इसका मन अगस्त्य के आश्रम में गया। साफ-सुथरे कपड़े पहने हुए दूध-जैसे श्वेत नर-नारी; निर्मल इनके आचार और ऊँचे इनके विचार, तप और सत्य के सतत आचरण से परम विशुद्ध जैसे ऋषियों का तेजस्वी व्यक्तित्व; घी और चन्दन की पुण्य सुगन्धि जगत् को प्रेरणामय बनाती और स्वर्ग को बाँधनेवाले यज्ञ का पवित्र धुआँ; और देवों के दर्शन करके सर्वदर्शी बन गई। आँखों से ऋत के रहस्य को खोजते, मन्त्रोच्चारण से देवों को पृथ्वी पर लानेवाले, विद्या और वाणी के परम उपासक मैत्रावरुण याद आ गये।

उसी क्षण वह अगस्त्य के जीवन का रहस्य समझ गया। अगस्त्य दैवी थे, शम्बर दानवी था। अगस्त्य और शम्बर का युद्ध देवों और असुरों का था। राजा वरुण और इस पत्थर के लिङ्ग की लड़ाई थी। अगस्त्य के शम्बर का विनाश चाहने का कारण यह था कि इस लिंग का नाश हुए बिना, सप्तसिन्धु की, आर्यों की, सिद्धों की और देवों की विजय नहीं हो सकती।

(५)

शंखनाद पूरा हुआ और सब पूजक, शोर मचाकर खड़े हो गये, और लिङ्ग के आसपास खूब नाचे। उसके बाद उस सर्पधारी पुरुष ने सामने रक्खा हुआ नैवेद्य का मास बाँट दिया और सब जाने लगे।

एक लम्बा बूढा आदमी उस सर्पधारी के साथ खड़ा था। तुग्र उसके आगे गया और ज़मीन पर माथा टेककर प्रणाम किया। उसके बाद इसने कुछ बात की और वह बूढ़ा खुश होकर नाचने-कूदने लगा। उसने तुग्र से कुछ कहा।

तुग्र आकर विश्वरथ और ऋक्ष को उसके पास ले गया। सन्ध्या-काल के क्षीण प्रकाश में और जलती लकड़ियों की अस्पष्ट रोशनी में विश्वरथ ने उस बूढे को देखा और मान लिया कि वह शम्बर ही होगा।

शम्बर साठ-पैसठ वर्ष का आजानुबाहु और बड़ा बलवान असुर था। इसकी सफेद और घनी दाढी कमर तक लटकती थी। यह भी सबके समान मृग-चर्म की लँगोटी लगाये, ऊपर कौड़ियों की माला बाँधे हुए था। हाथों, सिर और पैरों पर भी कौड़ियों की माला थी और ललाट पर सुन्दर मोरपखों का मुकुट था। इसके खड़े होने और बातें करने के ढङ्ग मे गौरव था। इसकी बड़ी, बहादुर आँखें दोनों पर ठहरीं और उसने हँसकर सिर हिलाया।

'अगस्त्य के शिष्यों! अच्छा हुआ तुग्र! इनका नाम क्या?'

तुग्र ने दोनों का, जह्नु और कुशाग्र नाम से परिचय कराया और कहा—कि जह्नु हमारी भाषा जानता है।

शम्बर ने उससे पूछा—तू जानता है कि मैं कौन हूँ?

'आपका रूप बताता है कि आप असुरराज शम्बर के सिवा दूसरे कोई नहीं हैं।'—विश्वरथ ने मृदु स्वर में कहा।

शम्बर खूब हँसा। हँसते समय इसके बडे-बडे दाँत बाहर दीखते

और इसकी मुद्रा भयंकर हो जाती थी। 'क्यों? मुझे देखकर डर लगता है?'

विश्वरथ जवाब में अपने निराले ढंग से हँसा—'आप ऐसे नहीं दीखते कि डर लगे। और मैंने सुना है कि आप रोज एक पूरे आर्य को ज्वार और दूध में पकाकर खाते हैं। इसके बाद डरना भी किसी काम का नहीं।'

पहले तो शम्बर ने इसे बिलकुल नहीं समझा। तुग्र ने उसे समझा दिया। सिर हिलाकर, एक-एक करके पैर उठाकर एक प्रकार का नृत्य इसने किया और बहुत हँसा। सबों ने इसी प्रकार अपनी खुशी दिखाई। उनका आनन्द दिखाने का यह एक निपट निराला ढंग था।

'मैं आर्य को ज्वार और दूध में पकाकर खाता हूँ! हा-हा-हा-हा हो-हो-हो-हो! कौन कहता है?'

'कहता तो मैं हूँ। अगर जिन्दा रहे, तो देखेंगे कि कल आप क्या करते हैं।'—विश्वरथ भी मसखरी करता-सा हो, इस प्रकार हँसने लगा।

एक बूढ़ी औरत ने जो कि शम्बर के पास ही खड़ी थी, पीठ ठोककर कहा—'होशियार लड़के!' वह भी हँसने लगी।

'होशियार लड़का!'

'अगस्त्य कैसा है?'

'बड़े मजे में!'

'और मैं इस बार इसे बिलकुल ठीक कर दूँगा। यह किसलिए मुझे परेशान करता है?'

'वे कहते हैं कि आप तंग करते हैं।'

'मैं तंग करता हूँ? झूठी बात! यह मेरी प्रजा को मार डालता है। हमारे गाँवों को जला देता है। मेरे किले को ले लेता है; पर इस बार मैं इसको दिखा दूँगा। खैर, तुम! इन्हें उस कैदियों की झोंपड़ी में रख; अगर भागने की कोशिश करें, तो कह देना कि इन्हे बर्छी से छेद डाले।'—यह कहकर शंबर उस सर्पधारी के साथ चला गया और बाकी सभी बिखर गये।

तुग्र और उसके आदमी मन्दिर के पिछवाड़े में, जहाँ एक पत्थर की दीवार से बनाया हुआ भाग था, वहाँ विश्वरथ और ऋक्ष को ले गये। वहाँ सात-आठ छोटी सुरक्षित झोंपड़ियाँ थीं। उनमें से दो इन्हे देकर और दस-बीस सिपाहियों को वहाँ की देख-रेख में नियुक्त करके वे चले गये। चौकीदार भयकर थे और भाग्य से ही इनसे बातें करते। उन्होंने इन्हें अधपका मांस दिया और उसे इन्होंने खाया और मैली झोंपड़ियों को जहाँ तक हो सके, साफ करके सोने की तैयारी की। ऋक्ष बैठा हथेली पर सिर रखा और फूट-फूटकर रोने लगा। इसका हाथी-जैसा शरीर रोने से विचित्र रीति से ऊँचा-नीचा होने लगा। विश्वरथ हँस पडा।

'विश्वरथ! तू हँसा ही करता है। तुझे मेरी ज़रा भी चिन्ता नहीं। हे भरत-श्रेष्ठ! तू ऐसा क्यों हो गया? कल हम मर जायँगे। मैं दुर्दमन का पुत्र, अगस्त्य का शिष्य, विश्वरथ और सुदास का मित्र, कल इस दुष्ट असुर के पेट में उतारा जाऊँगा। हे वरुण! हे इन्द्र! हे अग्नि! हे मरुतो! यह क्या होनेवाला है? अरे मैं मारा गया! मैं मारा गया!'